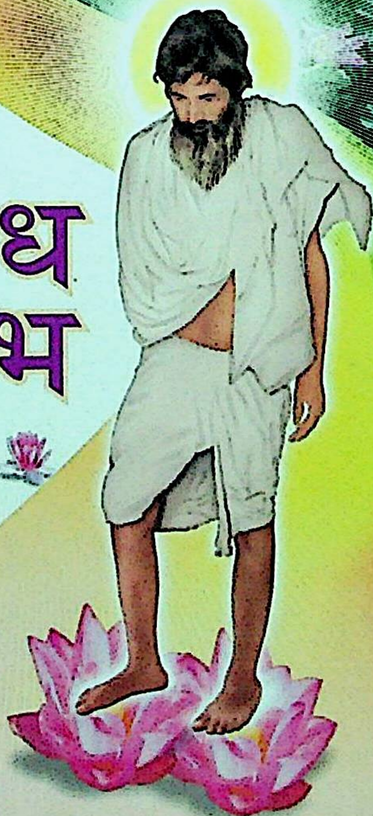


स्वबोध कुम्भ



स्थितप्रज्ञ भगवान्
श्री नागा बाबाके
श्रीचरणोंमें...

वन्दे विश्वमातरम्

विश्वधर्म-प्रचेता, स्वबोध मन्त्रद्रष्टा

प्रज्ञापुरुष ॐ श्रीआनन्दप्रभु

द्वारा

संस्थापित

विश्वधर्म के नव एकात्मक सूत्र

मानवका परम लक्ष्य एक है।

मानवका परम धर्म एक है।

सबका परमात्मा एक है।

सवका परम गुरु एक है।

परमात्माका परम ज्ञान एक है।

परमात्माका परम धाम एक है।

परमात्माका परम नाम एक है।

परमात्माका परम पथ एक है।

वसुधाका विश्व परिवार एक है।



विश्व धर्म परिषद्

स्वबोध आश्रम

स्वबोध-कुम्भ

विश्वधर्मो विजयते



स्वबोध आश्रम
श्रीज्योतिर्धाम-कोईराजपुर हरहुआ
वाराणसी (उ०प्र०)
२२११०५

स्वबोध साहित्य-
पुष्पाङ्क -३

संपादन एवं संकलन-
आचार्या डॉ० सरोजिनी माँ

प्रकाशक एवं वितरक-
शब्दायन
स्वबोध आश्रम
श्रीज्योतिर्धाम—कोईराजपुर हरहुआ वाराणसी (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण — २००० प्रतियाँ
तृतीय स्वबोध कुम्भ —युगाब्द- ५११४
वि.सं.२०६९ वैदिक दिनाङ्क ७ ऊर्जमास
आश्विन शरत्-पूर्णिमा, सोमवार-२९ अक्टूबर सन् २०१२ ई.

स्वबोध-कुम्भ

परम पावन
स्थितप्रज्ञ भगवान् श्री नागाबाबा
के
चालीसवें परिनिर्वाण पर्वपर
आयोजित

द्वादशाब्दिक तृतीय
स्वबोध कुम्भ—युगाब्द ५११४
के
एकादश दिवसीय 'विश्व धर्म परिषद् '
का
अमृत प्रसाद

ॐ

परिव्राजिका ऋद्धिमाता (श्रीमती राधिका देवी)

जीवनदीप–२२मई सन् १९४४ ई.से २२अप्रैल २००७ ई.
वि.सं.२००१ ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी रविवारसे
वैशाख शुक्ल षष्ठी रविवार वि.सं.२०६४ तक

आनन्दपुरी (नन्दगंज) गाधिपुरी (गाजीपुर) उ.प्र.

की

अविस्मरणीय स्मृतिमें

प्रकाशित



ॐ

सत्रे ह जातविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥

ऋग्वेद-मण्डल ७, सूक्त ३३, मंत्र ७

"प्राण और अपानरूपी मित्र और वरुण इस जीवन यज्ञशालामें शत सांवत्सरिक यज्ञ कर रहे हैं । जिनकी ओजशक्ति प्रवाहित होकर हृदय और मस्तिष्करूपी कुम्भमें एकत्रित होती है, जिससे अगस्त्य और वसिष्ठरूपी ऋषिचेतनाका जन्म होता है ।"

'स्वबोध कुम्भ'
मानव तनमें ऋषि जीवनके इसी
नवजन्मका आध्यात्मिक
अनुष्ठान
है ।

किसने कहा मनुजसे, पशुता नहीं मरेगी ।
दूर क्षितिजके पार, मृत्युकी मृत्यु खड़ी है ।
जब यहाँ सभी कुछ क्षणिक निरन्तर मरणशील,
तब निश्चित ही मृत्यु, मृत्युका वरण करेगी ।
होगा अमृतका प्रभात उषाकी लाली चहक रही,
जागो स्वबोधका कुम्भ लिये, प्रभुता बसुधापर उतर रही ।

श्रद्धाञ्जलि -

परम पावन
स्थितप्रज्ञ भगवान् श्रीनागा बाबा

काशीकी संत परम्पराके शीर्षसंत प्रातःस्मरणीय परमहंस स्वामी वीतरागानन्द सरस्वती महाराजकी शिष्यपरम्पराके अग्रणी 'स्थितप्रज्ञ भगवान् श्रीनागाबाबा' का नाम आज जन-जनमें विख्यात हो रहा है । गाजीपुर जनपदके करण्डा क्षेत्रके आरी-पहाड़पुर, सीतापट्टीमें स्थित उनकी समाधिस्थली एक विराट जनमानसकी श्रद्धाका केन्द्र बनी हुई है ।

शरत् — पूर्णिमा बाबाकी महानिर्वाण तिथि है । इसी पुण्य पर्वपर वि.सं. २०२९, २०अक्टूबर सन् १९७२, रमजानकी तेरहवीं तारीखको रात्रिके ९वजकर ३६मि. पर बाबाने सीतापट्टीकी अपनी लीलास्थलीसे चिरस्मरणीय कथाका संवरणकर महाप्रस्थान किया था ।

स्ववोध आश्रम-श्रीज्योतिर्धाम, वाराणसीके तत्त्वावधानमें आज हम देश-विदेशके अनेक 'स्वबोध साधना केन्द्र' एवं 'स्ववोध जागरण दीपों'के माध्यमसे शताधिक स्थानोंपर बाबाका चालीसवाँ निर्वाणपर्व मनाते हुए श्रीज्योतिर्धाममें तृतीय 'स्वबोध कुम्भ'की सम्पन्नतामें संलग्न हैं ।

यद्यपि वावाका सांसारिक दैहिक परिचय आदिसे अन्त तक अज्ञात रहा है किन्तु उनके संत-जीवनका पुण्य स्मरण जीवको इस भवचक्रसे मुक्ति प्रदान करनेवाला है । बाबा स्वयंमें एक जीवन-दर्शन रहे हैं । उनका जीवन ही उनका उपदेश है । यह आश्चर्यकारक है कि बावाने अपने जीवनके लगभग ८५ वर्षोंके साधना व सिद्धि कालमें जनताके बीच रहनेपर भी न तो

किसी व्यक्तिविशेषसे परिचय-सम्पर्क बनाया और न ही उन्होंने आजकी तथाकथित प्रचलित शैलीमें कथा-प्रवचन करते हुए जनताको कोई विशेष उपदेश ही किया। किन्तु वह उनका आत्मप्रकाश था जिसके आकर्षणमें लाखों-लाख लोगोंने बाबाका सान्निध्य लाभ पाया और अपने वास्तविक जीवनकी दिशा पहचानी।

आज भी बाबाकी पावन समाधिपर प्रतिदिन हजारों दर्शनार्थी अपनी श्रद्धा समर्पित करने तो आते ही हैं, इस अवसरपर त्रिदिवसीय वार्षिक मेलमें न जाने कितने परिवार बाबाको अपनी मन्नतोंका प्रसाद चढ़ाने आते रहते हैं। बाबा अपने जीवन-कालमें जैसे भीड़के बीच घिरे रहे, आज अशरीरी होकर भी वे वैसे ही भीड़से घिरे हुए है, - बाबा जैसे उन दिनों धार्मिक रीति-नीतियोंसे निर्बन्ध मुक्त रहे, आज भी वैसे सर्वजन सुलभ निर्मुक्त हैं।

पांथिक धर्मो-सम्प्रदायोंके दुराग्रहग्रस्त समाज-जीवनमें बाबाने अपने जीवनादर्शसे यह सिद्ध कर दिया था कि धर्मका वास्तविक आशय बाह्य औपचारिकताओंमें नहीं अपितु अन्तरकी आत्मसत्ताके साधनानुसंधानमें है। तभी तो उनकी चौखटपर हिन्दू कहे जानेवाले या स्वयंको मुसलमान कहनेवाले सभीका समान रूपसे स्वागत रहा है। उनके लिये स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, विषयी या जिज्ञासुका कोई भेद नहीं था। उनको सभी अपनी व्यथा सुना सकते थे। उनकी कृपा-प्रसादी प्राप्त करनेके लिये कोई विशेष योग्यताकी आवश्यकता न थी।

उन्हें बस हृदयकी स्वच्छता और निर्मलता ही प्रिय थी। वे जीवसे जो कुछ चाहते थे, बस इतना ही कि 'हम जैसे भी धूल-धूसरित हों- प्रभुके श्रीचरणोंमें सच्चे मनसे समर्पित हों'।

बाबाकी गूढ़ साधना-पद्धतिका 'समर्पण' ही महान् मर्म था। जैसे मलिन-से-मलिन नालेका गन्दा जल गंगाजीके पावन जलमें समर्पित होकर स्वयमेव पावनताको उपलब्ध हो जाता है, वैसे ही बाबाकी निगूढ़ साधनाका एकमात्र रहस्य मंत्र था- 'समर्पण'।

जीवके बसमें कहाँ है कि वह स्वयं-से-स्वयंका कीचड़ साफ कर सके! उसके पास न तो साधनारूप तपकी इतनी सामर्थ्य है और न ही विकारोंसे पार पानेकी प्रखर ज्ञानशक्ति। संसार-प्रवाहपतित जीव जन्मों-जन्मोंसे भवचक्रमें भटक रहा है। सिद्धान्तों-मतवादों और तथाकथित धार्मिक अनुष्ठानोंकी औपचारिकता निभाता हुआ इस मर्त्य धरापर वह जितना रोटी-कपड़ा-मकान जुटानेके लिये व्यस्त है उससे कहीं अधिक धार्मिक प्रपञ्चोंसे त्रस्त है।

कामनाओंकी सिद्धिका दावा करनेवाले तान्त्रिक-मान्त्रिक, साधू और फकीरोंकी भीड़में चित्तशुद्धिरूप धर्मका मूल आशय ही विस्मृत हो गया है। सभी नाना प्रकारके भोग सामग्रियोंको भगवान्को अर्पित कर उन्हीं भोगोंकी पूर्त्तिके लिये मंदिर-मस्जिदका चक्कर लगाते आपसमें झगड़ रहे हैं कि हमारा 'राम' श्रेष्ठ है कि हमारा 'रहीम'।

किन्तु बाबाकी उपदेशना अद्‌भुत थी। उन्होंने कभी किसीकी पूड़ी-खीर न स्वीकारी और न ही किसीके सुन्दर वस्त्र। वे तो सबको अपनी 'सुरति' का अद्‌भुत प्रसाद देते थे। वे स्वयंको ही अपने अन्तःवासी 'आत्मदेव'के प्रति समर्पित करनेके यथार्थ आकाँक्षी थे। उनकी पूजा-भेट थी 'सुर्ती। सुर्ती ही उन्हें प्रिय थी। जो गरीव-अमीर सबके पास थी, जिसमें किसीको कोई द्वन्द्व नहीं था,- न हरिजनको न ब्राह्मणको,- न शिक्षितको न अशिक्षित को।

बाबाका संदेश था- 'सभी अपनी सच्चे स्वरूपकी सच्ची 'सुरति'को-स्मृतिको पहचानें ।'

आज बाबाके अमृत स्मरणके साथ उनके प्रसादस्वरूप उनसे निस्सृत 'स्ववोध गंगा'के विस्तारित होते हुए प्रवाहको देखकर चित्त विस्मय विमुग्ध है । स्वबोध आश्रमके रूपमें उनका निर्मल यश चन्द्रधवल चाँदनीकी भाँति दिग्-दिगन्तमें प्रसरित हो रहा है । उनके परिनिर्वाण पर्वकी द्वादशवर्षीय स्मृतिके रूपमें आयोजित द्वितीय स्ववोध कुम्भ (ई. सन् १९९८)की परिपाटीसे प्रारम्भ हुए 'शरत्-पूर्णिमा महोत्सव'की आनन्दलहरी अब 'स्वबोध-दीपों'के माध्यमसे विश्वव्यापी होती जा रही है ।

बाबा जैसे जाति-पाँति, धनी-गरीव, शिक्षित-अशिक्षित, योगी-भोगी, साधु और पतित सवको समान रूपसे तारनेवाले थे, वैसे ही उनकी कृपाकी धार 'स्वबोध ज्ञान' की पतित पावनी गंगा भी जन-जनको विना किसी भेद-भावके कृतार्थ करनेवाली है ।

स्ववोध आश्रमके प्रतिष्ठाता, स्ववोध मंत्रद्रष्टा प्रभुश्री गुरुदेव 'प्रज्ञापुरुष ॐ श्रीआनन्दप्रभु'के रूपमें बावाने जिस अमृत ज्योतिका वरदान धरतीको दिया है, उस ज्योतिके प्रकाशमें धरतीपर सच्चे 'मानव धर्म'के रूपमें सत्यकी वेदोंसे चली आ रही जीवनधार जेन्दा-अवेस्ता बाइबिल-कुरान और श्रीगुरुग्रन्थ साहिब सवको समेटे हुए आज सार्वभौम विश्वधर्मके रूपमें प्रतिष्ठित हो रही है ।

स्वबोध-दीपोंके द्वारा जिस उत्साहसे बावाका 'स्मृति पर्व' मनाया जाने लगा है, वह 'स्वबोध-संचेतना'के प्रति जन सामान्यमें दिनों-दिन उसकी बढ़ती हुई श्रद्धाका ही मूर्तिमन्त रूप है । वस्तुत: नाना कल्पनाओं- धारणाओं और मनोविकारोंमें उलझे मानवको केवल भौतिक वैज्ञानिक समृद्धि या नाना धर्म-पन्थोंके

स्वर्गिक आकर्षण सुशान्त और तृप्त करनेमें असमर्थ हैं । उसे जबतक अपने ही सच्चे 'स्व' रूपका बोध प्राप्तकर अन्तहीन जीवनकी यात्राकी विश्रान्ति नहीं मिलेगी, तबतक उसकी युग-युगकी भूख मिटनेवाली नहीं है ।

जैसे विज्ञान मनको शान्त और संयमित करनेमें अक्षम है वैसे तथाकथित धर्मोंका संघजाल भी आज निरर्थक सिद्ध हो चुका है । किसी लोकमें बैठे हुए भगवान्की पूजाके सहारे धरतीको त्राण दिलानेकी कल्पनाकी असारता भी अब प्रमाणित हो चुकी है ।

यथार्थतः धरतीके मानवको न तो कभी किसी बाह्य धर्मानुशासनकी आवश्यकता थी और न ही किसी बाह्य भगवान् की । बाबाके स्मरणके साथ हम इस सत्यको जानकर भ्रममुक्त हो अपने अन्तस्के सनातन भगवान् और सनातन धर्मकी शरणमें आ जायँ — यही हमारी बाबाके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी ।

जगत्गुरु भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको अंतिम रूपसे यही कहा था कि 'हे अर्जुन! तुम सारे अहमात्मक धर्मोंका परित्यागकर मुझ एककी शरणमें आ जा । '- जीवके जीवन-दुःख, शोक और चिन्तासे मुक्तिका यही आत्यन्तिक मार्ग है ।

वस्तुतः विना सद्गुरु-प्राप्तिके यह अत्यन्त सहज और सरल बात हृदयमें बैठती नहीं । जो बहुत निकट होता है — प्रकृतितः वही दृष्टिपथमें नहीं आता । वर्हिमुखी इन्द्रियाँ बाहर-बाहर दौड़नेमें ही अपनी अर्थवत्ताका अनुभव करती हैं । वह स्वयंको स्वयंसे जितनी दूर ले जा सकती है — उसीमें उनको अपनी पौरुपता और प्राप्तिका सुख मिलता है ।

वस्तुतः मानव-जीवनका दुःख-मूल है उसकी मनमुखता, और उसका वास्तविक कारण है अपने सच्चे स्वरूपका अज्ञान। जिसकी एकमेव औषधि है- 'स्वबोध'। जबतक मानव अपने सच्चे 'स्व' को ही नहीं प्राप्त कर लेता तबतक न तो उसके मनका द्वन्द्व समाप्त होगा और न उसके अभावोंकी शृंखलाका ही अंत होगा। बाबा कभी-कभी अपने महामंत्रको स्पष्ट ही बोला करते थे –

शिव-शिव जपत मन आनन्द।
कटत यमका फन्द शिव-शिव ॥

यथार्थरूपसे अपने सच्चे 'शिवस्वरूप' की स्मृति, उसका निरंतर जप ही आनन्दका स्रोत है और यही उसे मृत्युके बन्धनसे छुड़ानेवाला मुक्तिका भी परम साधन है।

आज परम पावन बाबाकी स्मृति करते हुए प्रभुश्रीकी यह अभिव्यक्ति स्मरण हो रही है कि "यदि हमें बाबाकी कृपा-डोर न मिली होती तो जिज्ञासा और संदेहकी बौद्धिक तर्कनाओंके भँवरमें यह जीवन-नौका किनारे लगती भी या डूब जाती – इसका क्या ठिकाना!"

सचमुच श्रीगुरुदेव ही इस जीवन-नैयाके सच्चे पतवार है। उनकी प्राप्तिके बिना सारा श्रम निरर्थक है। जव जीवको अपने गन्तव्यका परिचय नहीं तव फिर उसके रात-दिन चलते रहनेका क्या अर्थ ? हवाके झकोरोंमें जैसे नौका कभी इधर तो कभी उधर दिशाहीन भटकती रहती है, वैसे मानव-जीवन भी सद्गुरुके विना अनन्त भटकाव है। किन्तु जिसके अन्तस्में जीवनके गन्तव्यपर पहुँचनेकी लालसाने जन्म ले लिया उसके लिये सद्गुरु ही उसकी मंजिल हैं।

क्योंकि एक बार जब उनकी प्राप्ति हो जाती है और जीव उनकी शरणमें अपना माथा उनके श्रीचरणोंमें रख देता है, तब शेष कुछ नहीं रहता । उसकी युगों-युगोंकी भूख मिट जाती है और उसके समस्त उहापोहोंका अन्त होकर उसे परम विश्रान्तिका अनुभव हो जाता है । उसमें न तो कोई कर्म रहता है न ही कोई कर्मफल । इसीलिये उसके बन्धनका भी प्रश्न नहीं होता ।

पर बाबा जैसे सद्गुरु सबको मिलें कैसे ! निश्चितरूपसे 'सदगुरु'की प्राप्ति सभी प्रश्नोंका समाधान है किन्तु उनकी प्राप्ति स्वयं सबसे बड़ा प्रश्न है । यह तभी संभव है जब जीवके समस्त पुण्योंका एक संग उदय हो । इसलिये यह अवस्था सभीके लिये तुरन्त प्राप्य नहीं, जिससे हम श्रीगुरुके सम्मुख होते हुए भी उन्हें पहचान नहीं पाते । हमारा तामसिक-राजसिक वृत्ति-बवन्डर ऐसा आच्छादन खड़ा किये रहता है कि 'वे' हमें कुछ-के-कुछ दिखाई देने लगते हैं, और हम उनकी कृपा प्रसादीसे वंचित हो जाते हैं ।

जीव जिस राग-द्वेषसे ग्रस्त है वह अपनी सीमित धारणाओंके चश्मेंसे ही उन्हें देखनेका प्रयास करता है । उनकी चर्या, उनका व्यवहार और उनके शब्दोंका अर्थ वह अपनी उसी दृष्टिसे लगाता है । अतएव सबसे आवश्यक है ऐसी सम्यक् दृष्टिकी प्राप्ति,-जो 'सद्गुरु'की पहचान कर सके । सद्गुरुकी पहचानके लिये उन्हें देखनेकी सम्यक् दृष्टि चाहिये जिसका साधन है – 'साधू-संग'- उनकी सेवा, उनका सत्संग और स्वाध्याय ।

सतपुरुषोंकी सेवा ही वह महापुण्य है जिससे सद्गुरुके दर्शन होते हैं । बड़ी बात यह नहीं कि लोग जिन्हें सद्गुरु कहते हैं हम भी उन्हें सद्गुरु मानकर उनका पूजन व वन्दन करने लग

जायँ । वह सव करना अनुचित नहीं, किन्तु मुख्य बात है- हमें स्वयं उनमें 'सदगुरु' का दर्शन होना । उन्हें हम अपनी दृष्टिमें जव सद्‌गुरुभावमें देख लेनेमें सक्षम होंगे तभी उनका संग प्राप्त होगा । अपनी कामनाओंकी पूर्त्तिमें तो लोभवश हम उनकी खुशामद करेंगे ही, किन्तु खुशामद और सेवामें आकाश-पातालका अन्तर है । सेवा निःस्वार्थ है जब कि खुशामद स्वार्थपरताका ही दूसरा नाम ।

बावाकी स्मृतिसे हमारे जीवनमें सेवाकी निःस्वार्थ वृत्तिका जागरण हो, यही बाबाके वास्तविक 'सद्‌गुरुरूप' के दर्शनकी प्रविधि है । अन्यथा बाबाके पास आनेवालोंकी भीड़ कम नहीं थी । चूँकि संतोंके संगसे, दर्शनसे जीवका भौतिक कल्याण स्वाभाविक है । अत: बावाके पास आनेवालोंमें अधिकांश जनोंकी भौतिक भावना ही प्रवल थी । वे अपने नाना दुःखोंसे दुःखी उनके चारों-तरफ चक्कर लगाते रहते किन्तु उनमेंसे गिने-चुने ही कुछ ऐसे महापुण्यवान थे जो उनकी आत्म-अवस्थितिको पहचानकर आत्मज्ञानकी जिज्ञासासे उनके दुर्लभ सान्निध्यका लाभ उठानेवाले रहे ।

ऐसे ही अनगिन अज्ञात विरल जिज्ञासुओंमें एक परम महिमाशाली रहे — हमारे प्रभुश्री । जिनका परम सौभाग्य था कि उन्होंने बावा जैसे प्रेरणास्रोतको प्राप्त किया, उन्हें पहचाना और आज उसी पहचानको वे जन-जनकी पहचान बनानेके लिये श्रमशील है ।

यह प्रभुश्रीका ही प्रकाश है जिसमें बावाके मौन जीवनके सारे गुह्य पक्ष प्रकाशित हो रहे है । अन्यथा बाबाकी आध्यात्मिक साधना-सिद्धिके गूढ़ मर्मसे संसार अपरिचित ही रह जाता ।

"धन्य हैं ऐसे श्रीगुरु और धन्य हैं ऐसे शिष्य — जो एक दूसरेको प्राप्तकर ऐसे धन्य हो उठें कि सारा जग धन्य-धन्य हो जाय।"

बाबाकी कृपासे हम सबके भीतर ऐसे शिष्यत्वका आविर्भाव हो कि हम प्रभुश्रीकी महिमाको समझ पायें। आज 'स्वबोध कुम्भ-युगाब्द ५११४' के इस महान् पर्वपर प्रातःस्मरणीय बाबाके पूज्य श्रीचरणोंमें यही आत्मनिवेदन है। बाबाकी महान् दयाके साक्षात् मूर्तरूप प्रभुश्रीगुरुदेव हम सबके हृदयोंमें अपनको प्रकाशित करें। इसी प्रार्थनाके साथ सकल प्राणियोंके लिये परमात्मदेव श्रीगुरुदेवकी कृपाकी सद्कामना।

बाबाकी जय

परम पावन

स्थितप्रज्ञ भगवान् श्रीनागाबाबाके

चालीसवें निर्वाणपर्वपर आयोजित

तृतीय

स्वबोध कुम्भ युगाब्द- ५०१४ के ग्यारह दिवसीय

विश्वधर्म सङ्गममें भाग ले रहे समस्त साधकोंकी

परम सद्गुरुके पावन श्रीचरणोंमें

हार्दिक श्रद्धाञ्जलि

तेरी बगियाके पुष्प तुझें हैं अर्पित

(प्रथम स्वबोध कुम्भ युगाब्द — ५०८७ —ई. सन् १९८५)

अपनी साधनाके प्रारम्भिक दिनोंमें जब मैं गाजीपुर(गाधिपुर) जनपदके अपने पारिवारिक निवास सैदपुर(सिद्धपुर)की श्मशान भूमिमें मौन रहकर उपासनालीन था,- अपनी तीव्र साधनाके लिये किसी एकान्त जंगलकी शरण लेना चाहता था। बस एक ही धुन थी कि रात-दिन भजनमें लगा रहूँ। उन्हीं दिनों बाबाकी असीम प्रेरणासे पधारे श्रद्धेय श्रीभूषणजी (परमहंस श्रीशान्तानन्दजी महाराज) की वह उपस्थिति आज भी आँखोंमें सजीव-सी बनी हुई है।

वही प्रथम अवसर था जब मैंने श्रीनागा बाबाका नाम सुना। सचमुच गुरुकी खोज कोई कैसे करेगा ? वह तो 'गुरु'ही शिष्यको ढूँढ़ लेता है। अन्धा क्या प्रकाशको जाने ! जबतक प्रकाश स्वयं उसे प्रकाशित न कर दे। बाबाने अपनी असीम कृपासे परमहंसजीके द्वारा मुझे अपनी शरणमें बुला लिया। मेरी उत्कण्ठा रुक न सकी और मैं परम सद्गुरुदेव बाबाके दर्शनार्थ उनके पवित्र धाम सीतापट्टी पहुँच गया।

ध्यान आता है उस दिनका जब मैं उनको देखकर भी उनकी विचित्र पागलों जैसी क्रियाओंमें उन्हें पहचान नहीं सका। भीड़से घिरी हुई एक क्षीण काया तेल और मिट्टीसे सने कपड़ोंमें भागवत विग्रहकी भाँति पूजित हो रही थी। तथाकथित पारम्परिक धार्मिक वातावरणसे रहित परम सन्तका ऐसा अनूठा दरबार जो सबके लिये हर समय खुला था — मेरी समझमें नहीं आया।

देखा–देखी संकोचवश अनमने भावसे मैंने भी उनकी पूजाकी और पैर छूना चाहा । गैरिक वस्त्रोंमें मैं अपनी स्वच्छताको कुछ अधिक ही महत्व दे रहा था, कि कहीं धूल न लग जाय । – अतः थोड़ी सावधानीसे ही झुकते हुए उनके पाँवकी ओर हाथ बढ़ाया । मैं हतप्रभ रह गया — जब उन पागल–दीवानेने बड़ी कोमलतासे मेरे हाथ पकड़ लिये ।

सतत नीची रहनेवाली उनकी आँखें ऊपर उठीं । न जाने उसमें क्या था ! उन क्षणोंमें मेरे भीतर एक निर्विचार शून्यता छा गयी । मैं उन्हींमें खोता जा रहा था । तभी उनके मुखसे भोजपुरी बोलीके कुछ शब्द स्फुटित हुए । उन्होंने कहा — मुनि ! अपने पैर छूईं ।' कहते हुए उन्होंने मेरा हाथ मेरे ही पाँवपर रख दिया और मुझे अपनेको ही प्रणाम करवाया ।

प्रथम दर्शनके उस अदभुत संकेतका मर्म अब समझने लगा हूँ तो चित्त विभोर हो जाता है । उनके उस प्रथम स्पर्शमें ही मैं अनन्तकी दीक्षामें उतर गया था । बाबाके अमृत सान्निध्यके ढ़ाई वर्षकी अल्पावधिमें ही साधनात्मक अनुभूतियोंकी बाढ़में धीरे–धीरे मेरे कपड़ेका गैरिक रंग न जाने कब सफेद हो गया– कुछ पता नहीं चला । अब तो सारे रंगोंको फीका कर देनेवाले गुरु रंगमें ही होली खेली जा रही थी ।

आज उस रंगरेजको अपनी पार्थिव लीलाको पूर्ण किये हुए तेरह वर्ष पूरे हो गये हैं किन्तु उनके स्नेहकी सादगी प्रान्त एवं देशकी सीमाका अतिक्रमण कर समूचे विश्वको अपने रंगमें रंगनेके लिये फैलती जा रही है । 'स्वबोध कुम्भ' जीवनके उसी महान् कुम्भकारकी अद्भुत आनन्दमयी स्मृति है । यह उन्हींकी पिचकारीके रंगका विचित्र चमत्कार है ।

श्रीगुरुदेवकी कृपा-प्रेरणासे ही 'स्वबोध विश्व' की सिद्धिस्वरूप धरतीपर विज्ञानमय चेतनाके अवतरणके लिये श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, २ सितम्बर १९८०को 'स्वबोध आश्रम'की रचनाने मूर्त्तरूप लिया और विगत पाँच वर्षोंसे सत्संग, साधना शिविर, गुरुकुलों एवं प्रकाशनकी विधाओंसे आश्रम 'समग्र जागरण अभियान' की वैचारिक एवं साधनात्मक पृष्ठभूमि निर्मित करनेका प्रयास करता रहा। आज उसी शृंखलामें आश्रमकी पंचम वार्षिक 'जीवन जागरण समष्टि' स्वबोध कुम्भके रूपमें बावाकी पावन समाधि स्थलीपर सम्पन्न हो रही है।

बावाके आन्तरिक आशीषसे निरन्तर विकसित होती हुई बावाकी बगियाके विभिन्न कोनोंसे चुने अनगिन पुष्प आज उनके पावन श्रीचरणोंमें श्रद्धानत हैं। मेरे लिये सौभाग्यका यह अवसर अत्यन्त आनन्दप्रद है। इस श्रद्धाञ्जलि पर्वपर अपने परम आराध्यसे इतनी ही विनती है कि यह आनन्दपुष्प आपकी सुरभिको दिग्दिगन्त फैलानेमें आपकी लीलाका सजग यंत्र बना रहे — इतनी कृपा अवश्य बनाये रखना।

ॐ सद्गुरु श्रीचरणकमलेभ्यो नमः

स्वबोध कुम्भ

श्रीगुरुपद नख ज्योतिसे, ज्योतित हो हर द्वार ।
अन्तर बाहर ज्योतिका, जगे ज्योति संसार ।।१।।

गुरु मूरति अन्तरमें, बाहर प्रभु परिवार ।
जित देखूँ तित दरस हो, चिदानन्द ओंकार ।।२।।

ज्योति अखण्डित नामकी, आहत अनहद नाद ।
परावाक् मन पार सोइ, सत् पूरण गुरु पाद ।।३।।

गुरुपद शीश नमित सदा, चित चकोर प्रभु ओर ।
रसना कीर्तन निरत नित, हो सेवा सिरमौर ।।४।।

पद–अर्चनकी लालसा, जनम–जनमकी प्रीति ।
हो अखण्ड सम्वर्धित, विश्वधर्म गुरु ज्योति ।।५।।

पञ्चकोषकी तरङ्गिणी, तामें जीव सवार ।
विनु माँझी पतवारके, कैसे हो भवपार ।।६।।

तीन अवस्था तीन गुण, दुस्तर जलनिधि धार ।
त्रिगुणातीत तुरीय पद, सत् चित् ज्योति अपार ।।७।।

जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिमय, अन्न–प्राण–मन कोश ।
जगे ज्ञान–आनन्दमय, जब सद्गुरुं सन्तोष ।।८।।

ज्ञान और आनन्दके, पार प्रकृति चिद्रूप ।
परम सच्चिदानन्द तत् , निष्कल नित्य स्वरूप ।।९।।

बड़भागी गुरु भक्त नर, जिन हिय हरिका प्यार ।
जीवन सदा स्वधर्मरत, नरहरि खेवनहार ।।१०।।

देह कुम्भ जड़ मर्त्य है, मरत —मरत मरि जाय ।
अमृत जीवन ज्योति है, जगत-जगत जगि जाय ।।११।।

जा घट जागे ज्योति यह,वह अमृत हो जाय।
मरकर फिर भी ना मरे, अमृत कुम्भ कहाय।।१२।।

अंश कुम्भ नर देह यह, विश्व कुम्भ प्रभुदेह ।
व्यष्टि-समष्टि अखण्ड है, देह अदेह विदेह ।।१३।।

आमन्त्रण निजबोधका, जागे अमृत ज्योति ।
युग-युग 'अमृत कुम्भ'हो,जले ज्योतिसे ज्योति।१४।

जग 'स्वबोध अभियान'का; महापर्व है कुम्भ ।
विश्वधर्म स्वाराज्यका, समारम्भ है कुम्भ ।।१५।।

मेला नहिं यह मेल है, ब्रह्म-जीव बिच भीति।
द्वैतभाव मनका मिटे, चले मेलकी रीति ।।१६।।

विस्मृत जीव स्वरूपसे, सब व्याधिनको मूल ।
जन्म-मरण नदधारमें, कबहुँ न पावे कूल ।।१७।।

दीन-दुःखी जग जालमें, सोवत नहिं विश्राम ।
भोजन वस्त्र मकानमें,चिन्तित व्यस्त अशान्त।।१८।।

वैद्य सद्गुरु दे पता, जीव पाव निज रूप ।
मुक्त होय भव चक्रसे, होवे स्वस्थ सरूप ।।१९।।

जीवनकी यह विधि परम, श्रेय आत्मपथ मित्र ।
विरला बूझे यह मरम, शेष प्रेयपथ वृत्त ।।२०।।

मानव स्थितप्रज्ञ हो, स्व-स्थित सुस्वस्थ ।
मानवता देवत्वमें, परिणित हो कूटस्थ ।।२१।।

धरतीपर देवत्वका, यह प्राकृत अभियान ।
मानव जाने स्वयंको, यही सनातन ज्ञान ।।२२।।

सत्य सनातन धर्मका, 'आत्मज्ञान' सर्वस्व ।
जिसको भूला जीव जग, व्यर्थ पसारे गर्व ।।२३।।

याद दिलाने मनुजको, प्रगटे श्री भगवान् ।
सीतापट्टी गाधिपुर, भारत देवस्थान ।।२४।।

परमहंस वृत्ति विरत, नहीं देह अभिमान ।
नागाबाबा जग कहे, नहिं तनपर परिधान ।।२५।।

हिन्दू-मुस्लिम-सिख सब, आते उनके थान ।
जाति-पंथका भेद नहीं, सब थे एक समान ।।२६।।

उनकी करुणा-कृपासे, हो जाता दुःख अन्त ।
लीला देखत चकित थे,क्या गृहस्थ क्या सन्त।२७।

जो आया बाबा सरन, सधे सभीके काम ।
भक्ति फली जीवन खिला, जो आया निष्काम ।।२८।।आये

आये कितने आतुर, जिज्ञासु बुध सन्त ।
जाने गति उनकी नहीं, बाबा थे बेअन्त ।।२९।।

बाबा अनगढ़ गूढ़ सत, अटपट भाषा मौन ।
थे त्रिकालदर्शी परम, भेद बतावे कौन ।।३०।।

क्या है उनकी साधना, क्या है उनका ज्ञान ।
चमत्कारके बाद भी, बाबा थे अनजान ।।३१।।

कोई कथा न कीर्तन, रोजा नहीं नमाज ।
स्नान-ध्यान-पूजा करम, नाही साज समाज ।।३२।।

यज्ञ नहीं भण्डारा, नहिं सेवा नहिं दान ।
सूखी रोटी-चटनी, नहिं मेवा-मिष्ठान ।।३३।।

बिना जान-पहचानके, बाबा विचरें गाँव ।
कर ही जिनका पात्र था,नहीं बिछावन ठाँव ।।३४।।

कौन कहें वे हिन्दु हैं, कौन कहें इस्लाम ।
वेद-पुरान-कुरान नहिं, कोई नाम न धाम ।।३५।।

बाबा भक्तिसे सना, था पावन वह देश ।
सत्य स्वयं व्याख्यान बन, उतरा था निज वेश ।।३६।।

नेति-नेति जेहि वेद कहि, करता स्तुति गान ।
सांख्य बुद्धके मौनमें, होता जो द्युतिमान् ।।३७।।

बाइबिल और कुरानका, निराकार भगवान् ।
बाबामें साकार सब, कैसे हो व्याख्यान ।।३८।।

तत्त्व बुद्धिके पार है, मनसातीत प्रकाश ।
जग जागे निज रूपमें, तब हो सत्य उजास ।।३९।।

सत पुरुषोंका सत्त्व चित्, प्रभु सत्ताकी चाह ।
नियति विश्व मन क्या है, कौन सकेगा थाह ।।४०।।

बाबाके सन्देशसे, जग हो कैसे स्नात ।
साँझ ढ़ल रही थी सहज,तन कबतक दे साथ।४१।

सन्तोंमें श्रद्धा प्रबल, जन मानसकी रीति ।
पर श्रद्धा हो ज्ञानमय, जगे ज्ञानमें प्रीति ।।४२।।

ज्ञान-भक्तिसे संयुत, दिव्य कर्मका योग ।
फूटे धारा प्रेमकी, हो साधित संयोग ।।४३।।

बाबाकी सच्चेतना, ढूँढ़े तल संवाह ।
जिससे जीवन-ज्योतिका, युग-युग बहे प्रवाह ।।४४।।

गुरु ढूँढ़े निज शिष्यको, जैसे सिख गुरु-द्वार ।
जल ढूँढ़े तल आपना, तल ढूँढ़े जलधार ।।४५।।

बाबाका गुणगान यह, पहुँचा प्रभुके कान ।
जो विरक्त घर-बारसे, थे रत सत-संधान ।।४६।।

दिव्य स्वप्न आदेशसे, त्यागे सँग-संसार ।
बाल हृदय निर्मल मनस, करने तत्त्व-विचार।।४७।।

सिद्धपुरी शमशानमें, योग-समाधि लीन ।
ॐ श्रीआनन्दप्रभु, मौन ध्यान तल्लीन ।।४८।।

बाबाका वृतान्त सुन, मनमें जगा हुलास ।
ध्याये बाबा द्वारपर, सत्य दरसकी आस ।।४९।।

दरसनकी शुभ प्रेरणा, बजे हृदयके तार ।
संन्यासीके पग बढ़े, पकड़े गङ्ग किनार ।।५०।।

बाल ब्रह्मचारी तरुण, वय उन्नीस प्रसिद्ध ।
जगदुद्धारक भाव ले, आये शरणन सिद्ध ।।५१।।

पूर्वजन्म प्रारब्धवस, प्रभुको था प्रज्ञान ।
किन्तु प्यास थी पूर्ण हो, सर्व मनुज सन्तान।।५२।।

त्रिकालज्ञ बाबा परम, घट-घट जाननहार ।
देख रहे प्रभु आगमन, भावी युग अवतार ।।५३।।

बाबा सबके उरवासी, जोह रहे थे बाट ।
देख नमित निजदासको,थाम लिये दोउ हाथ।।५४।।

बोले छूईं पाँव निज, मुनि खुद अपने हाथ ।
कहते बाबा प्यारसे, हाथ ले लिये हाथ ।।५५।।

वह पावन स्पर्श पा, प्रभु-मन हुआ अकाम ।
प्रभुने अपने चरण छू, खुदको किया प्रणाम।।५६।।

बाबा मन महिमा अगम, दीन्ह नामका दान ।
आदि नामके साथ ही, विद्याका वरदान ।।५७।।

गुरुने पाया शिष्यको, सिखने श्रीगुरुदेव ।
पूर्णकाम दोनों हुए, एक पात्र एक देव ।।५८।।

पिता-पुत्र दोउ सङ्ग-सङ्ग, जन्में जग व्यवहार ।
पुत्र जन्मसे ही पिता, कहलाये संसार ।।५९।।

बिना पिता कहँ पुत्र है, गुरु बिन कैसे शिष्य ।
ब्रह्म-जीव दोउ एक है, ज्ञानरूप गुरु-शिष्य।।६०।।

अंशान्शी सद्भावसे, गुरु-सिखमें है भेद ।
अंश पाव निज रूप जब, अंशी सङ्ग अभेद ।।६१।।

बाबाके सान्निध्यमें, बीते दिन दो वर्ष ।
अल्प समयमें ही हुआ,फलित ध्यान उत्कर्ष।।६२।।

विद्यालय-क्रम भङ्गकर, प्रभु थे हुए विरक्त ।
बाबाकी आज्ञा हुई, हुए पुनः अनुरक्त ।।६३।।

निर्जन गाँगी तीरपर, बाघेश्वरी वन बीच ।
साधन अरु स्वाध्यायका,पङ्कज विकसा कीच।।६४।।

पर्व मकर संक्रान्ति दिन, बेला ब्राह्म मुहूर्त्त ।
सच्चित् आनन्दबोधकी, जली अखण्ति ज्योति ।।६५।।

नीम कल्पतरु छाँवमें, हो गई देह अदेह ।
झरना फूटा ज्ञानका, प्रभुश्री हुए विदेह ।।६६।।

सद्गुरु कृपा प्रसादसे, छूटा जग अध्यास ।
हुई समाधि स्वरूपमें, जगा स्वबोध प्रकास ।।६७।।

समाधान सूरज उगा, फैली दिसि-दिस वास ।
जीवनके सन्मार्गका, जगको मिला अकास ।।६८।।

उतरी ज्योति जगत्में, बाबाका वरदान ।
शक्तिपात कर गुरुने, पाया परम विराम ।।६९।।

आश्विन पूनम सहस दो, उन्तिस विक्रम रैन ।
आयी घड़ी प्रयाणकी, बाबा मूँदे नैन ।।७०।।

एक प्रहर पूनम शरद्, देह धरे भगवान् ।
ज्योति अमर अविराम जग, दीप देह निर्वाण।।७१।।

बाबाकी समाधि स्थली, जय श्रीनागाधाम ।
सीतापट्टी गाँव बिच, स्थित पावन धाम ।।७२।।

स्थितप्रज्ञ सुजानका, श्रद्धा पर्व महान् ।
बाबा परिनिर्वाणकी, स्मृति करे जहान ।।७३।।

भक्त जनोंका मेला, पूनमपर हर वर्ष ।
दर्शन-पूजनमें जुड़े, सारा भारतवर्ष ।।७४।।

बाबातीर्थ समाधि नित,आर्त जनोंकी भीड़ ।
जैसे भटके-भूलकर, पंछी आते नीड़ ।।७५।।

यहि विधि पूजा-भक्तिमें, था लवलीन समाज ।
पर दरसनतक ही रहा, सीमित उसका काज ।।७६।।

श्रीगुरु आज्ञासे प्रभु, थे आये शिवधाम ।
काशी शिक्षापुरीमें, करने गुरुका काम ॥७७॥

अन्तर अनुभव ज्ञानसे, भावित हों सब भक्त ।
एक अखण्ड समाज हो,जन-जन हों अविभक्त।७८

इष्टदेव-गुरु-मत-पंथोंमें, विगलित मानव जाति ।
बन्धु-बन्धु सब एक रस, हो सम्मति किस भाँति ॥७९॥

आत्मज्ञान नहिं सरल है, त्याग विराग कठोर ।
नहिं आवे संन्यास मन, जिससे होय अजोर ॥८०॥

धर्म-नामपर भिन्न पथ, दिखलाते सव पन्थ ।
धर्मभेदसे धरापर, नहिं मानव निर्ग्रन्थ ॥८१॥

बावाजीवन जो खिला, सत सरसिज सन्देश ।
कैसे जनव्यापी बने, फैले देश-विदेश ॥८२॥

अपने जीवन-कार्यको, किस विधि दूँ सतरूप ।
आश्रम-आश्रम घूमते, शोध रहे प्रारूप ॥८३॥

सन्तों-गुरुओंके निकट, सुना प्रभूने ज्ञान ।
जानी उनकी परम्परा, जाना जग अज्ञान ॥८४॥

बुद्धि-विकल्पोंमें पड़ा, मानव मन अनजान ।
सत् है मनसातीत जव, क्या है सेतु प्रमाण ॥८५॥

जीव-प्रकृति- परमात्मा, तीनोंके हैं द्वन्द्व ।
सृष्टितत्त्वका सत्य क्या,जीवनका क्या छन्द॥८६॥

सत्यज्ञान निःशब्द है, क्या कैसे दें शब्द ।
किस विधि जीवन जग सके,घर-घर हो आनन्द।८७।

प्रश्नोंके विखरावके, विविध पक्ष बहुरूप।
जन्म-मरण अरु मुक्तिका,क्या है सत्य स्वरूप।८८।

स्वर्ग-नरक सब कर्मफल, ईशकृपा क्या हेतु।
निराकार-साकार बिच, क्या है अन्तर सेतु ।।८९।।

जग सपना या सत्य है, कैसे हो निरधार।
जड़-चेतनके ज्ञानमें, यदि मन ही आधार ।।९०।।

सन्त दरस अध्ययनरत, बीते बरस अनेक।
गहन समाधि ध्यानमें, भई बुद्धि थिर एक ।।९१।।

आत्मानुभव प्रकाशमें, बुद्धि हुई प्रज्ञान।
प्रभुकी प्रज्ञाज्योतिमें, उतरा सत्य महान् ।।९२।।

हरिद्वार गङ्गा पुलिन, जागी दैवी दृष्टि।
पूर्ण पूर्णतामें सजी, दीखी पूर्ण समष्टि ।।९३।।

प्रभुने जाना जड़ जगत, है चित्त् ज्योति प्रकाश।
चिन्मय सत् चिन्मय जगत्, धरती और अकाश ।।९४।।

पूर्ण व्यक्त है जगत्में, जगत् पूर्णकी ज्योति।
व्यक्ताव्यक्त समान है,पूर्ण-पूर्ण अभिव्यक्ति।।९५।।

पूर्ण पूर्णमें रमि रहा, पूरण ही गतिमान्।
गति स्थिति स्थिति गति, पूरण गति निर्वाण ।।९६।।

बूँद-बूँद परिपूर्ण है, जस पूरण है सिन्धु।
बूँद सिन्धुमें पूर्ण है, पूर्ण सिन्धुमय विन्दु ।।९७।।

सत्य अखण्डित एक रस, ज्ञानाज्ञान समान।
वुद्धिज्ञान आधार है, मानव बुद्धि प्रधान ।।९८।।

परम सत्य बुधि पार है, नहीं बुद्धि विपरीत ।
जान न पाये बुद्धि तत्, पर करती परतीति ॥९९॥

बुद्धि सत्व सम्मानमें, मानवका सम्मान ।
बुद्धिचेतना उन्नयन, मानवका उत्थान ॥१००॥

दीया बुद्धि प्रदीप है, दीया आतम ज्योति ।
दीयासे दीया जले, हो मानव पुर ज्योति ॥१०१॥

देह दीप हो ज्यातिमय, मानव हो प्रज्ञान ।
धरती हो अध्यात्ममय, ज्ञान पूर्ण विज्ञान ॥१०२॥

दिव्यदृष्टिके जागते, हुए विरोध समान ।
अस्ति-नास्ति सब एक सङ्ग,जड़-चेतन नहिं आन॥१०३॥

प्रभुने पाया धर्म-पथ, सत् स्वधर्म पहिचान ।
जाना जीवन कार्यको,जेहि विधि जग कल्यान।१०४।

परम धर्म स्व-बोध है, सर्व पन्थ सत सार ।
जिसके विनु निःसार सब, वृक्ष बिना आधार ॥१०५॥

द्वय-अद्वयका द्वन्द्व नहीं, भेद न भेदाभेद ।
परम सत्य स्वबोधमें, सर्व एक सङ्ग वेद ॥१०६॥

मानव प्रज्ञाशील हो, विश्वधर्मकी छाँव ।
धरती एक परिवार हो, सबकी सुन्दर ठाँव ॥१०७॥

प्रज्ञाशील समाजका, हो अभिनव निर्माण ।
विश्वधर्म आधारपर, हो सबका परित्राण ॥१०८॥

दैवी संरचना सजी, प्रभु मानस आकाश ।
काशी आ तन्मय हुए, करने मूर्त्त प्रकाश ॥१०९॥

काशी पावन भूमिसे, हो सन्देश प्रसार ।
सत स्वबोध गुरुज्ञानका, धरतीपर विस्तार ।।११०।।

बाबा परिनिर्वाणके, आठ बरस दिन-रात ।
तपकर प्रभु पारख हुए, वेदज्ञान निष्णात ।।१११।।

परम्परागत संस्कृत, अरु दर्शन विज्ञान ।
शास्त्रज्ञान मर्मज्ञ हो, हुए पूर्ण विद्वान ।।११२।।

अब प्रभु थे गुरु पारस, बोधशक्ति द्युतिमान् ।
सहज बोध स्वसङ्गसे, कर लें आप समान ।।११३।।

चमत्कार प्रभु प्रेमका, बढ़ने लगा जहान ।
शक्तिपात सद्शिष्यमें, सहज घटे अवधान।।११४।।

तब प्रभुने निज कार्यको, दिया समष्टि स्वरूप ।
आश्रम नाम स्वबोधसे, हुआ प्रकाशित रूप ।।११५।।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, शुभ तिथि मङ्गलवार ।
संवत् सैंतिस सहस दो,स्वप्न हुआ साकार।।११६।।

पूर्ण भागवत ज्ञानका, हुआ धरा अवतार ।
मानव अतिमानव बने, अभिनव पूर्णाधार ।।११७।।

ज्ञान-कर्म अरु भक्तिका, संयुत योगाधार ।
प्रज्ञाशील समष्टिका, प्रकटा धर्माधार ।।११८।।

विश्वधर्मकी ज्योतिसे, भइ पूरबमें भोर ।
दिसि-दिसि गगन उजासमय, प्रज्ञापुरुष अजोर ।।११९।।

नभ स्वबोध गुरुमन्त्रसे, गूँज उठा चहुं ओर ।
धर्म-स्थापन कार्यमें, प्रभुश्री भये विभोर ।।१२०।।

पूनम परिनिर्वाणपर, जुटता प्रभु परिवार ।
प्रेम मगन उत्साहसे, भर जाता संसार ॥१२१॥

शरद पूर्णिमा रात्रिभर, होता कीर्तनगान ।
'श्रीगुरु शरणं'मन्त्रकी, जगती मुधुरिम तान॥१२२॥

बाबा भगवत् भक्तिमें, श्रद्धाञ्जलिका पर्व ।
वर्ष-वर्ष सजता रहा, बीते बारह वर्ष ॥१२३॥

'विश्वधर्म सन्देश'का, जगमें फैला हर्ष ।
प्रभु हृद हुई प्रकाशना, विश्वधर्म उत्कर्ष ॥१२४॥

'विश्वधर्म परिषद्' सजे, हुआ दिव्य सङ्कल्प ।
प्रति बारहवें वर्षपर कुम्भ होय अविकल्प ॥१२५॥

स्थितप्रज्ञ महान्का, पूनम परिनिर्वाण ।
श्रद्धाञ्जलि श्रीचरणमें, होवे कुम्भ महान् ॥१२६॥

कुम्भोंके इतिहासमें, जुड़ा नया अध्याय ।
जग 'स्वबोध' के कुम्भसे, हुआ चकित हरषाय ॥१२७॥

ग्यारह दिवसीय कुम्भमें, सब जन सब समुदाय ।
सादर आमन्त्रित रहे, धर्मभेद नहिं आय ॥१२८॥

बाबा समाधि स्थलसे, हुआ कुम्भ प्रारम्भ ।
ज्योति अखण्डित जल उठी, अभिनव यज्ञारम्भ ॥१२९॥

घर्षणसे पाषाणके, हुआ देव आह्वान ।
यज्ञज्योति बन प्रकटे, यज्ञपुरुष भगवान् ॥१३०॥

यज्ञपुरुष गुरु ज्योतिका, फैला धर्म प्रकाश ।
कुम्भामृत उतरा धरा, हुआ पूर्ण आकाश ।।१३१।।

पन्थोंके बिच धर्मका, हुआ मेघ निर्घोष ।
नहिं नभ बिन बादल कोई, नहिं बादल नभ कोष।१२३

एक सनातन धर्मके, सभी पन्थ समुदाय ।
ज्योति जगी सद्धर्मकी,पन्थ न धर्म कहाय।१३३।

प्रथम धर्म परिषद् सजी, सीतापट्टी गाँव ।
द्वितीय ध्रुवार्जुन गाँवमें, प्रभुके पावन धाम ।।१३४।।

जन्मभूमि प्रभुश्रीकी, हो गयी श्रीगुरुधाम ।
प्रगटे धर्म-प्रकाश बन, चौमुखनाथ अकाम।।१३५।।

नव स्वबोधके कुम्भकी, दिन-दिन फैली ख्याति ।
जनपद-प्रान्त-स्वदेशसे, विश्व गगन भयी व्याप्ति।।१३६।।

कुम्भ ज्योति गुरुज्ञानकी, हुई प्रदीप्त निधूम ।
युग-युग रहे अखण्ड यह,पावन हो मन धूम।१३७।

धर्ममूर्त्त बाबा चरण, कुम्भ स्मृति पर्व ।
परम गुरु भगवान्का, वेद प्रकाश अथर्व ।।१३८।।

महापर्व यह कुम्भ है, पर्वोंका भी पर्व ।
ज्योतिर्मय गुरुदेवका, चिन्मय्र ज्योतिर् पर्व ।।१३९।।

दीपकसे दीपक जले, दीपदान कल्याण ।
निज स्वरूपका ज्ञान हो, मिले ज्योति वरदान ।।१४०।।

काशी शिवकी नगरी, ज्योतिर् शिवका धाम ।
कुम्भज्योति प्रभु सङ्ग ही,पहुँची शिवके गाँव।१४१।।

प्रज्ञापुरुष प्रभुका, सत्य सनातन वास ।
काशी आत्मप्रकाश है, प्रभुका नित्य निवास ।।१४२।।

आत्मदेव चिद् रूपमें, हुई प्रतिष्ठित ज्योति ।
इष्टभेद अरु पन्थकी, मेटी मनकी भीति ।।१४३।।

ज्योति प्रभूकी ज्योतिसे, ज्योतित जग प्रभु धाम ।
प्रकट रूप कलिकालमें,काशी ज्योतिर् धाम ।१४४।

सत्य सनातन ज्योतिका, काशी आदि स्थान ।
विश्व सनातन धाम है, जहँ ज्योतिर् भगवान् ।।१४५।।

ज्योति सगुण-साकार है, निर्गुण-निःआकार ।
परम तत्त्व सद्रूप सोइ, ज्योति तत्त्व-संसार।१४६।

ज्योतिरूप शिव तत्त्व है, विश्वेश्वर भगवान् ।
लिङ्ग ज्योति शिव सद्गुरु, नाना नाम अनाम ।।१४७।।

शिव चिन्मय सत् सर्वमय, निराकार-साकार ।
निज-निज रुचि अनुसार सब,सुमिरै गुरु आधार ।१४८।

नाम - रूपके भेदसे, इष्टोंके हैं भेद ।
ज्योति आदि निजरूप है, जिसमें सभी अभेद ।।१४९।।

ज्योति परम परमात्मका, अद्वय मूर्त्त स्वरूप ।
मन्दिर-मस्जिदमें जले, सेवें सुर नर भूप ।।१५०।।

सब कुछ दीखे ज्योतिमें, ज्योतित यह संसार ।
ज्योति दृष्टि आवे नहिं, तासों जीव अन्हार ।।१५१।।

मानव पावे दृष्टि यह, हो स्वबोध संसार ।
विश्वधर्म सन्देश यह, नवयुगका आधार ।।१५२।।

ज्योतिर् प्रभुकी अर्चा, अहं दीपका दान ।
घर-घर ज्योति प्रकाश हो, यही कुम्भ आह्वान ।।१५३।।

श्रद्धा-भक्ति युक्त हो, नर-नारी जो कोय ।
दीपदान सादर करै, मन-वांछित फल होय ।।१५४।।

करै ज्योति आराधना, गुरुसे राखै प्रीति ।
धर्ममार्गमें निरत जो, कबहुँ न हो भवभीति।।१५५।।

सर्वरूप प्रभुके हैं, जो प्रिय जिसको होय ।
वाही इष्ट हृदय रख, प्रभुमें भेद न कोय ।।१५६।।

सार्वभौम यह उपासना, विश्वधर्मका सार ।
'आत्मोपासन'सहज पथ,पन्थ भेद नहीं रार।।१५७।।

गुरु-सद्गुरुका द्वन्द्ध नहिं, परम गुरु परमात्म ।
परम एककी शरणमें, गल जाता अहमात्म ।।१५८।।

जो ग्यारह दिवस लगि, पूर्ण कुम्भ करि वास ।
भक्ति-मुक्ति सब सङ्ग ही,पावै बिनहि प्रयास।१५९।

कल्पवास महिमा अमित, जानें सन्त सुजान ।
सद्गुरु संगति सर्वपद, कहि न जाय गुणगान ।।१६०।।

कुम्भ सन्त सत्संगति, सद्गुरु मण्डल छाँव ।
महापुण्य जग जीवका,पाव सहज निज ठाँव।१६१।

सद्गुरु कृपा प्रसादसे, उतरी अमृत धार ।
ज्योतिर्मय अमृत कलस, विरला चाखनहार ।।१६२।।

देवासुर संग्राममें, सिन्धु - मथनको सार ।
निकला जो अमृत कलस,चीर सिन्धु जलखार।।१६३।।

देव-असुर मन्थित अमिय, मर्त्य जीवकी प्यास ।
ढूँढ़ रहा जग मानव, होकर विकल हतास ।।१६४।।

कोई खोजे नर तनमें, कोई ढूँढ़े मनमें ।
कोई ढूँढ़े उसे अवनिमें, कोई स्वर्गिक बनमें ।।१६५।।

दैहिक-दैविक खोजमें, मिटे न अन्तर प्यास ।
खोजत-खोजत मरत जग,मिटै न मन संत्रास।।१६६।।

अमृत अन्तर धन है, धन्वन्तरिके हाथ ।
तन-मन पार निधान है, आतम धन श्रीनाथ ।।१६७।।

समय शेषपर शोभित, श्रीहरि विभु भगवान् ।
अमृत समयातीत है, अन्तर्यामी राम ।।१६८।।

राम कहे रहमान कहे, खुदा कहे या श्याम ।
अल्लह गाड यहोवा, अमृतके सब नाम ।।१७९।।

देह-कुम्भ अमृत कलस, विश्व कुम्भ ब्रह्माण्ड ।
अमृत रस झर-झर झरे, पीवे सूरा जान।।१७०।।

सहस्रार नभ अमृत, उर्ध्वमुखी हो जीव ।
अमिय पानकर तृप्त हो, बन्धमुक्त हो शिव ।।१७१।।

शरद् पूर्णिमा रात्रिमें, चन्द्र रश्मिके सङ्ग ।
अमृत बरसे धरापर, पीवे जो निःसङ्ग ।।१७२।।

देह-कुम्भ जीवात्मा, विश्व-कुम्भ ब्रह्मात्म ।
द्वैतबुद्धि परिहारसे, जीव-विश्व एकात्म ।।१७३।।

भेद उपाधि मात्र है, जीव तत्त्वतः ब्रह्म ।
भेदाभेद विभेद सब, दृष्टिकोणके भ्रम ।।१७४।।

दृष्टिकोण ही जीवका, बन्धरूप संसार ।
पूर्ण दृष्टिके जागते, नभ निर्द्वन्द्व निहार ।।१७५।।

स्वर्ग-मर्त्यके बीच है, पाप-पुण्यका द्वन्द्व ।
सत दोनोंके पार है, अमिय सच्चिदानन्द ।।१७६।।

पापसरित तट त्यागकर,पुण्य कमायें धीर।
पुण्यधार उरधारकर, पावे अमृत क्षीर ।।१७७।।

मन बोझिल जब पापसे, तन लिपटा बिच कीच ।
आत्मविहग कब उड़ सके,बोझ विवश गति नीच।।१७८।।

मूलाधार सुषुप्त है, जीव चेतना-शक्ति ।
अन्तःकरण विशुद्धिसे,होती निर्मल ज्योति।।१७९।।

अधो-केन्द्रमें कुण्डलित, कामरूप है शक्ति ।
ज्यों- ज्यों चित निर्मलता बढ़े, बढ़े प्रेमकी ज्योति ।।१८०।।

सुप्त शक्ति है वासना, जग जाये तो प्रेम ।
काम अधोगामी करे, उर्ध्वगमन प्रभु नेम ।।१८१।।

उर्ध्वगमन हो शक्तिका, सहस्रार जग जाय ।
देह-कुम्भ निर्बन्ध हो, विश्व-कुम्भ हो जाय ।।१८२।।

धरती मिले अकाससे, नभ वसुधापर आय ।
देह विश्व दोउ एकमें, देह विदेह कहाय ।।१८३।।

देह भावके छूटते, मैं-तू सब मरि जाय ।
देही होय स्वरूपमें, मृत अमृत बन जाय ।।१८४।।

कुम्भ अमियका पर्व है, अमृतकी सुधि देय ।
बिसरा-भूला मनुज यह,निज घरकी सुधि लेय ।१८५।

स्वार्थ-कपटके जालमें, जनम-जनम सरि जाय ।
ऐसी मरनी ना मरै, फिर ना जन्में आय ।।१८६।।

धन- दौलत किस कामके, खाये और कमाय ।
परमारथमें नहिं लगे, जन्म अकारथ जाय ।।१८७।।

स्त्री-पुत्र-कलत्र सब, मात-पिता नहिं स्वार्थ ।
सच्चा स्वारथ राम हैं, जब जागे परमार्थ ।।१८८।।

क्षुद्र स्वार्थको त्यागकर, जो सेवे परमार्थ ।
परम अर्थकी शोधमें, सधे स्वार्थ-परमार्थ ।।१८९।।

जो कुछ है सब ईशका, ईश काज लगि जाय ।
यहि विधि जो स्वारथ करै,कर्मबन्ध नहिं पाय।१९०।

सत्संगति सद्गुरु शरण, सेवा-सन्त महान् ।
सर्वास्वर्पण गुरुचरण, जीव होय भगवान् ।।१९१।।

कुम्भ-तत्त्व बाबा सुरति, स्मृति है निजरूप ।
कल्पवास विधिवत् करे,कायकल्प हो भूप॥१९२॥

होवे दिन-दिन उपासना, प्रति पूनम मिलि सङ्ग ।
आत्मोपासनके बिना, भोजन-पान कुसङ्ग ॥१९३॥

वर्ष-वर्ष पूनम शरद, महारास प्रभु सङ्ग ।
युग वीतेपर कुम्भ करि,अमृत होय असङ्ग ।१९४।

जीवनमें एक बार भी, जो पावे स्वसङ्ग ।
निश्चय ही उस जीवका, सपने नहिं दुःख-सङ्ग ॥१९५॥

सुख-दुःखकी नित बादरी, घेरे रहे कि जाय ।
स्वस्मृति गुरु सङ्गमें, पूनम सम हरषाय ॥१९६॥

विश्व कुम्भ-सन्देश यह, जो घर-घर पहुँचाय ।
प्रभुका निरमल सुयश कह, स्वयं विमल हो जाय ॥१९७॥

गुरुसेवा सम तीर्थ नहिं, नहिं व्रत-पूजा-ध्यान ।
बिनु सेवा सब व्यर्थ श्रम, कर तन-मन-धन दान।१९८।

गुरु-कारज तन-मन लगे, अन-धन गुरुके नाम ।
मनसा- वाचा - कर्मणा, तेरा तेरे काम ॥१९९॥

प्रभु वन्दन श्रीगुरु स्मरण, सद्गुरु चरण नमामि ।
चरण शरण स्वस्मरण, पाहिमां प्रणमामि ॥२००॥

पाहिमां सद्गुरु शरण, साष्टांग प्रणमामि ।
प्रणिपात श्रीगुरुचरण, शरण नमामि नमामि॥२०१॥

अमृत दीक्षा

(द्वितीय स्वबोध कुम्भ-युगाब्द ५१००,ई.सन् १९९८)

जड़के अँधेरेमें सुप्त चेतनाके जागरणसे प्रारम्भ होती हुई सृष्टिकी अन्तर विकास यात्रामें गहराईसे झाँकें तो जो मौलिक सूत्र उस आदि विस्फोटमें क्रियाशील था आज भी उसी तीव्रतासे सक्रिय हुआ दीख जायगा।

'सत्यम्'के जिस प्रकाशने पाषाणको पिघलाकर वनस्पतियोंमें नभको चूम लेनेवाली ऊँचाइयोंमें प्राणोंके आरोहणकी ध्वजा लहरायी,- उसी प्रकाशने 'शिवम्'की अद्भुत कामशक्तिकी मुक्त क्रीड़ाके आनन्दमें पशु-पंछियोंको उनकी प्राणमयी गतिमें अवतरित किया, और इससे भी आगे पशुताकी दुर्दान्त भीषणतामें 'सुन्दरम्'की स्थापनाके लिये, मनुष्य रूपमें मनस चेतनाको उन्मेषितकर तृषित प्राणोंकी अंधी दौड़में मनको आधार बनाकर प्रकाशके संकेतोंको समझना प्रारम्भ किया।

जैसे-जैसे प्रकाश अँधेरेपर अपने आधिपत्यके लिये प्रयत्नशील होता गया — प्रकाशके समक्ष अँधेरा समस्याओंके नवीन-नवीन रूपोंमें चुनौती बनकर उभरता आया। इन्हीं चुनौतियोंके उत्तरमें प्रकाश और अँधेरेके द्वन्द्वमें निर्द्वन्द्व अपनी अभिव्यक्तिके विजय-अभियानका इतिहास अंकित करता रहा।

शताब्दियों-पर-शताब्दियाँ बीतती गयीं। संस्कृतियोंके न जाने कितने प्रसाद निर्मित हुए और काल-बाह्य हो गये। किन्तु 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'की पूर्णतम अभिव्यक्तिके लिये सक्रिय प्रकाशका विजय-रथ अपनी गतिमें रंचमात्र शिथिल नहीं हुआ।

सनातन ज्योति सुप्तावस्थाकी चरम परिणति पदार्थमयी जड़तासे प्राणमय पशु देहमें व्यक्त होकर वहाँ भी शिथिल नहीं हुई । वह प्राणमय पशु देहमें अपने सामञ्जस्यको न प्राप्तकर मनोमय मनुष्यके रूपमें व्यक्त हुई, किन्तु मानसिक चेतना भी साम्यको चरितार्थ करनेमें अक्षम रही ।

अपनी इसी अक्षमतामें उधेड़-बुन करते मनकी सीमित गतिके अहंग्रस्त ताने-वानेमें खोये बुद्धिवादी मनुष्यके इतिहासमें एक दिन वह घड़ी आयी जब मन अपनी ही द्वन्द्वात्मक परिधिमें चक्कर लगाते-लगाते पूर्णत: थककर गिर गया । द्वन्द्वातीत सत्ताके पूर्ण प्राकट्यमें मन अपनी गतिकी पराकाष्ठापर पहुँचकर सर्वथा निरुपाय हो गया ।

भविष्य-संरचनामें क्रियाशील द्वन्द्वात्मक मनने अपनी सीमाको अतिक्रमित करनेके लिये अनिवार्य रूपसे स्वयंकी मृत्युको स्वीकार लिया, और तब अपनी सुरक्षाके लिये नाना प्रकारसे सचेष्ट मनने अपनी मृत्युमें ही अमृतके रहस्यको जान लिया । यह धरतीपर मर्त्य भौतिक-चेतनामें अभौतिक अमृतचेतनाका प्रथम अवतरण था जब मनने मृत्युकी निष्क्रिय नीरव शान्तिमें अपनेको एक नया दिव्य जन्म दिया । मनके इस दिव्य रूपान्तरणके सूत्रने धरतीपर समताके आगमनका एक नया द्वार खोल दिया ।

द्वन्द्वातीतकी अभिव्यक्तिके लिये मनुष्यमें एक निर्द्वन्द्व ज्योतिर्तत्त्वकी आवश्यकता थी । मानव-चेतनामें मनके दिव्य रूपान्तरणसे जन्मी मनसातीत चेतनाको प्राप्तकर सत्ताका आन्तरसाम्य अपनी अमृत अभिव्यक्तिके लिये निर्बाधरूपसे मुक्त हो गया ।

ज्ञानालोकने जड़में प्राण एवं प्राणमें मनके प्राकट्यके क्रमसे उच्च-से-उच्चतर क्रान्तियोंका आलिंगन करते हुए मनमें दिव्य मनकी जागरितीको उपलब्धकर वनस्पति, जलचर- थलचर एवं नभचरोंके शरीरोंमें अपनी पूर्णताके लिये छटपटाते हुए अन्तमें मनका अतिक्रमण करनेवाली अतिमानसिक चेतनाके लिये मनुष्यदेहमें ही मानवीय देहसे कहीं अधिक दिव्य अतिमानवीय अमृत देहके जन्मका सूत्र हस्तगत कर लिया।

अन्नमय पुरुष, प्राणमय पुरुष और मनोमय पुरुषके साथ ही मानवीय सृष्टिकी शृंखलामें एक अनिवार्य कड़ी जुड़ गयी — विज्ञानमय पुरुषकी। मनोमयी सृष्टिके अँधेरेमें विद्युतकी कौंधके सदृश अतिमानवीय प्रज्ञाके आकस्मिक प्रकाशसे ऋषिचेतना एक अभिनव अमृत सृष्टिके लिये उत्कंठित हो उठी। एक प्रेम-स्नेहसे सजी सामञ्जस्यपूर्ण सृष्टिके जागरणके लिये व्यष्टिरूपसे एक व्यक्तिके भीतर संभव हुई इस दिव्य चेतनाको समष्टिरूपसे सबके भीतर संभव बना देनेका संकल्प जाग पड़ा।

जीवन-उदधिके दीर्घकालीन मंथनसे प्राप्त रत्नोंमें 'विज्ञानमय सत्ता'के गहन रत्न 'अमृत'की प्राप्तिके लिये सुर-असुर सभी लालायित हो उठे। मनकी कक्षामें विज्ञानमयी प्रभाके ज्योतिर्मय स्फुलिंगकी अचानक कौंधने मरणधर्मा सृष्टिमें 'अमृतकी प्यास' जगा दी, और इस प्यासने मनोमयी पुरुषको अबतक प्राप्त भोगोंकी क्षणिक रमणीयताके प्रति एक तीव्र असन्तोषसे व्याकुल कर नश्वरको अमर बना देनेके लिये प्रचण्ड क्रियाशीलतासे भर दिया।

एक ओर यह अदम्य प्यास सृष्टि-संरचनामें जड़ पदार्थमें सुखके अन्वेषी असुरोंमें सब प्रकारकी भौतिक समृद्धि और

संसाधनोंसे युक्त भोगमय दैहिक जीवनको अमर कर देनेके लिये घोर तपश्चर्याके रूपमें सक्रिय होने लगी तो दूसरी ओर चैतन्यको प्रधानता देनेवाले देवताओंमें सुखके आधारके रूपमें जड़से सूक्ष्म मनोमयी चेतनाकी पृष्ठभूमिपर स्वर्गिक विलासको अमरता प्रदान करनेवाली उपासनामें तल्लीन हो गयी ।

जबकि जड़ और चैतन्य दोनोंसे परे द्वन्द्वातीत चेतनाके उच्चतर आलोकमें आनन्दके शोधी रहस्यदर्शी मनीषियोंमें अमृतकी यह प्यास परमतत्त्वमें आरोहणकी साधनास्वरूपा मुक्तिका आदर्श बनकर देह-प्राण एवं मनसे अतीत राज्यका निमन्त्रण देती हुई 'अमृत कुम्भों'की छलकनसे धराको आप्लावित करने लगी ।

प्रत्येक कुम्भपर मुक्त चेतनामें निवास करनेवाले युगद्रष्टा ऋषियोंका मिलन मानव सत्ताको अमृतमय बनानेके लिये उन्हें अन्तर और बाह्यसे पुष्ट एवं वर्धित करते हुए सत्ताके प्रत्येक स्तरोंको प्यासकी सम्पूर्णतासे भर देनेवाले ज्ञानालोकका प्रसाद बाँटता रहा । युग-पर-युग बीतते गये और 'द्वन्द्वातीत' विजय-रथके आगे बढ़ते हुए एक-से-एक उत्कृष्ट अध्याय खोलता रहा ।

न जाने कितना कुछ कालके प्रवाहमें बह गया । कितने ही राज्य एवं व्यवस्था-प्रणालियाँ मिट गयीं । किन्तु चतुर्दिक समस्त परिवर्तनोंमें यदि कोई अपरिवर्तित बनी रही तो क्षण-क्षण मृत्युका आलिंगन करनेपर भी निरन्तर बढ़ती हुई पूर्ण जीवनकी अक्लान्त प्यास । कारण, या तो उसने दैहिक सुखको प्राप्त किया या दैविक सुखोपभोगमें लीन रही अथवा आध्यात्मिक आनन्दमें निवास करती रही,- किन्तु सत्ताकी समग्रतामें मानवीय चेतनाके प्रत्येक स्तरोंपर एक ही साथ वह पूर्ण तृप्तिको उपलब्ध न हो सकी ।

पदार्थकेन्द्रित देहवादियोंकी सांसारिक वैभव देनेवाली तपश्चर्या एवं चैतन्यकेन्द्रित धार्मिकोंकी स्वर्गिक सुखकी लालसासे युक्त आराधना दोनोंमें ही वह अमृत जीवन पूर्णत: फलित न हो सका ।

संतोंकी आत्मसाधना भी व्यक्तिकी आत्मिक मुक्तिके रूपमें ही संकुचित रह गयी । एकान्तिक रूपसे आत्माके स्तरपर मुक्ति एवं पूर्णताकी परितृप्तिका आनन्द तो उपलब्ध हुआ किन्तु मन-प्राण एवं देहके स्तरोंपर भौतिक जीवनकी व्यवस्थामें भी मुक्ति एवं पूर्णता चरितार्थ न हो सकी ।

किन्तु असफलताकी इस दीर्घ अवधिमें जीवन-यात्राकी विविध जीवन-शैलियोंकी परस्पर अपनी-अपनी सीमाएँ एवं अपूर्णताके अवबोधसे एक-दूसरेके साथ उचित सामञ्जस्य एवं समन्वयके लिये पृष्ठभूमि तैयार होती गयी और धीरे-धीरे मनकी चेतना जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें आत्मा एवं देहकी समग्रता व पूर्णताके अपूर्व सामञ्जस्यकी ओर उन्मुख होने लगी ।

देह-प्राण-मन एवं आत्माको एकांगीरूपसे सत्ता मानकर सर्वांगपूर्ण 'दिव्य जीवन'की चरितार्थतामें मानवीय चेतना अपनी असफलतासे सत्ताकी समग्रतामें अपनी पूर्णताके लिये एक व्यापक एवं समग्र जीवन-विधाकी स्वीकृतिके लिये उन्मुख हो गयी । जहाँ जागतिक सत्तामें व्यष्टि भावनाके स्थानपर समष्टिगत विचारणा प्रतिष्ठित होने लगी वहीं नाना शास्त्रोंकी घनी पगडन्डियोंको पार करता हुआ सन्त हृदयोंमें परम्परासे सुरक्षित ज्ञानालोक व्यक्तिगत मुक्तिकी सीमाको लाँघकर विश्वजीवनकी सर्वमुक्तिके राजमार्गका रूप लेने लगा ।

मनोमयी सृष्टिके आदि प्रभातमें ही सुपूर्णता, समता, अमृत, आनन्द एवं मुक्तिकी जो अन्तर् प्यास थी — एक दीर्घयात्राके

बाद भी भौतिक समृद्धि एवं स्वर्गिक सुखोंसे तृप्त मानवजातिने पूर्वसे कहीं अधिक प्रबलताके साथ उस प्यासकी अनुभूति की । और आज तो तमसाच्छादित मनुष्य मनके द्वारा संचालित जीवन संरचना- जबकि एक ही झटकेमें विनाशकी गोदमें पहुँच जानेके निकट है —अत्यत भयातुर एवं विवश-सी अपने परित्राणके लिये किसी अव्यक्त शक्तिकी ओर निहारने लगी है ।

पदार्थके भीतर शक्ति एवं शक्तिकी अन्तर्वर्ती चेतनाकी ओर शोधमें अग्रसर विज्ञानके पाँव अनजाने ही उस अव्यक्तकी स्वीकृतिकी ओर बढ़ने लगे हैं जिसका साक्षात्कार ऋषि चेतनाने वहुत पूर्व ही कर लिया था । वैज्ञानिक प्रयोगोंकी पराकाष्ठामें मनुष्य, मनकी सीमा एवं उसके अन्तरमें छिपी अद्‌भुत अबूझ क्रियाशीलतासे चमत्कृत हो गया है ।

निर्द्वन्द्व चेतनाका जो सत्य आत्माके एकान्तिक देशको अधिगत कर शान्ति-ज्योति एवं शक्तिका प्रतीक बनकर मुक्ति एवं आनन्दके रूपमें अभिव्यक्त हो रहा था अब वही सत्य सत्ताकी समग्रतामें अपनी पूर्ण अभिव्यक्तिके लिये इन्द्रियोंके बाह्यकरणों द्वारा वैज्ञानिक निष्पतियोंमें भी अपनेको सत्यापित करता हुआ दीख रहा है ।

वैज्ञानिकोंके सूक्ष्म एवं गहनतम प्रयोगों तथा विश्व व्यापारकी अनेक घटनाओंके विश्लेषण एवं संश्लेषणमें बहुत कुछ ऐसा है जिसे मानव बुद्धि व्याख्या करनेमें अपनी सीमा एवं असमर्थताको पहचानने लगी है । और बुद्धिकी असमर्थताकी यह पहचान ही वह शुभ संकेत है जिससें समस्त मानवजातिके लिये बुद्धिसे अतीत विलक्षण ज्ञानके स्रोतकी वैज्ञानिक स्वीकृत संभव हो सकेगी ।

एक अर्थमें यह स्वीकृति उस स्वीकृतिसे कहीं अधिक सक्रिय एवं जीवन्त होगी जिसके लिये धार्मिक पद्धति 'विश्वासों'का सहारा लेती रही है ।

सामान्यतया जीवन अपने ही स्तरकी अनुभूतियों एवं सत्योंके प्रति आस्थावान होता है । अत: उसको उसीकी पद्धतिसे विकसित करते हुए उच्चतर सत्यकी ओर ऊँचा उठा ले जाना कहीं अधिक सुगम एवं सार्थक है अपेक्षाकृत उच्चतर सत्यके प्रति विश्वास उत्पन्नकर उसमें आरोहणकी यात्राका संकल्प जगानेके ।

ऋषि चेतनाने मनकी चक्रिय गतिका अतिक्रमण कर बुद्धिके अतीत आत्माकी एकान्तिकतामें जो उच्चतर आलोक जाना उसे सामान्य जनतक संवादित कर पाना उनके लिये अत्यन्त दुष्कर रहा है । इसके लिये सामान्य मनुष्यको परम्परागत शिक्षणके क्रमसे उस ऊचाँईतक पहुँचा ले जानेके लिये उनकी ग्राहक क्षमताको विकसित करना भी एक आवश्यक पग था । जिसे विज्ञान अपने विधिसे तयकर रहा है ।

यद्यपि वर्तमान स्थितियोंमें विज्ञानकी यह प्रविधि 'ज्ञानके उच्चतर सोपानों' की मात्र वौद्धिक स्वीकृतिके रूपमें ही उपस्थित होगी । किन्तु बुद्धिकी एकमात्र तार्किक बाँधाके निरस्त होते ही धार्मिक मतमतान्तरोंके संकीर्ण दुराग्रहोंसे परिमुक्त हृदयस्थ अन्तर्ज्योति निर्भ्रान्त होकर जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें हृदय एवं बुद्धिके अभूतपूर्व सामञ्जस्यके द्वारा एक आमूल क्रान्ति उपस्थित करनेमें समर्थ हो जायगी ।

तब मनुष्य अपनी समग्र चेतनामें जीनेकी परिपूर्ण शैलीपर ही अपना जीवन-प्रासाद निर्मित करेगा और वाह्य जीवन-संगठनामें 'विज्ञान'की व्यवस्था एवं आन्तरिक जीवनसंरचनामें 'विज्ञान'की अवस्थाकी उपलब्धिके द्वारा पृथ्वीपर उस अमृत पूर्णत्वकी

सम्भावना मात्र स्वप्न एवं आदर्श न होकर यथार्थरूपसे अपनी चरितार्थताको उपलब्ध कर लेगी।

वस्तुतः 'सत्यं शिवं सुन्दरम् 'की पूर्णताका उज्ज्वल स्वप्न मनस्की सीमित चेतनामें जिस उच्चतर देशसे उतरा है - जबतक मनुष्य मनोमयी चेतनाका अतिक्रमणकर उस पूर्ण अखण्डित 'विज्ञानमयी' चेतनामें प्रतिष्ठित नहीं हो जाता तबतक वह आदर्श और यथार्थके गहन द्वन्द्वसे कभी मुक्त नहीं हो सकेगा।

चाहे वे जड़की स्वीकृति देनेवाले भौतिकवादी हों या चैतन्यकी स्वीकृति करनेवाले धार्मिक हों, या दोनोंका समन्वय करनेवाले उदार अध्यात्मवादी- कोई ऐसा नहीं है जो, जहाँ है उस स्थितिको अंतिम मानकर 'यथास्थिति'को स्वीकार कर ले। सभी 'जो है' से 'होना चाहिये' की ओर अभिमुख हैं। धार्मिक धरतीसे रुष्ट होकर स्वर्गमें जाना चाहते हैं तो वैज्ञानिक धरतीको ही सव प्रकारसे स्वर्ग बना देनेके लिये उत्सुक है। सन्त इन दोनोंके प्रति तटस्थ रहकर इन सबसे पृथक् चेतनाके किसी और ही लोकमें प्रस्थान करनेके लिये उत्कंठित हैं। सबकी एक ही समस्या है। 'जो है' वह नहीं चाहिये और 'जो नहीं है' वह चाहिये।

'जो है' वह यथार्थ है। 'जो होना चाहिये'वह है आदर्श। विश्व मानवकी यही सार्वभौम मौलिक समस्या है। यदि वह अकेले है तो भी वह कुछ होना चाहता है, संस्थानमें है तो संस्थानकी वृद्धि चाहता है, देशका प्रतिनिधि है तो देशकी प्रगति चाहता है और विश्वकी अगुवाईके लिये खड़ा है तो विश्व वन्धुत्व और शान्तिके व्यापक अर्थके लिये प्रयासशील है।

जिसे हम गति कहते है- वह और कुछ नहीं, यथार्थसे आदर्शके बीचकी दूरीको ही तय करना है। तो ऐसा कौन होगा

जो आदर्शका पथिक न हो। यदि कोई यह कहे कि 'वह कुछ नहीं होना चाहता' तो यह भी उसके लिये एक लक्ष्य और आदर्श ही बन जायेगा।

इस प्रकार यद्यपि सभी आदर्शवादी ही हैं। तथापि भौतिक मूर्त्त लक्ष्यके रूपमें जहाँ आदर्शके प्रति सबकी सहमति होती है वहीं जहाँ सूक्ष्म अमूर्त लक्ष्यको आदर्शके रूपमें ग्रहण करनेकी स्थिति आती है — संदेह खड़ा हो जाता है। कि - 'कहीं जिसे हम आदर्श कहते हैं। वह यथार्थतः हो ही नहीं ? मात्र मनकी एक मोहक कल्पना हो।'- किन्तु यदि ऐसा ही सच हो -फिर तो सभी जन्मसे मृत्युतक मिथ्या आदर्शोंकी भूल-भुलैयामें ही उलझे हुए सिद्ध होंगे।

तो उच्चतर आदर्शोंको लेकर संदेहकी ऐसी अवस्था यद्यपि अत्यन्त भयावह है — फिर भी इसके मूलमें सत्यका बीज निहित है। इसमें एक सच्चाई है। वस्तुतः जिनके लिये 'मन' ही सब प्रकारके प्रमाणोंका आधार है, जो मनको ही अन्तिम सच्चाई जानते हैं-उनके लिये मानवताके समस्त आदर्शकी कोई यथार्थता नहीं और इसलिये उनकी जिन्दगीमें कहीं कोई ठहराव नहीं है। मनकी तरलता उन्हें कब कहाँ ले जायेगी- वे स्वयं नहीं जानते।

किन्तु जिन्होंने 'प्यास'में ही 'जल'की अनुभूति पा ली है। उनके लिये 'यथार्थ' के भीतर 'आदर्श'की यथार्थताको देख पाना कठिन नहीं। प्यासकी अनुभूतिका अर्थ ही है स्वयं जलकी अनुभूति। प्यास जलके अभावका अनुभव है तो जल प्यासके अभावका भाव है। दोनों अनुभव जलके ही हैं। एक जलका अभाव है — दूसरा जलका भाव। यथार्थ अभाव है और आदर्श

है भाव, किन्तु जल वह समग्र यथार्थता है जो भावमें भी है और अभावमें भी । यदि जलका अस्तित्व ही न हो तो प्यास किस बातकी ? यदि पूर्णता हो ही नहीं तो उसकी चाहका क्या अर्थ ?

मनुष्य समताका– शान्तिका– आनन्दका– सामञ्जस्यका– पूर्णताका प्यासा है । यदि हमारे प्यासमें ही इन सबका अस्तित्त्व न हो तो प्यासका क्या अर्थ ? सत्यत: हमारी प्यास ही इनके अस्तित्त्वका प्रमाण है । सीमित मानसिक चेतनामें जागी पूर्णकी प्यास ही पूर्णके अस्तित्त्वका सर्वोत्तम प्रमाण है ।

हम जिसे 'होना चाहिये ' कहते हैं वस्तुत: उसका भी अस्तित्त्व होना चाहिये । जिस प्रकार 'यथार्थ'का 'है' सच है वैसे ही 'आदर्श'के 'होने चाहिये' का भी 'है' होना होगा । हमारे पास दो 'है' है । एक आदर्शका, दूसरा यथार्थका । आदर्श काल्पनिक न होकर वह भी यथार्थ है । 'यथार्थ' समग्र है और समग्रकी यथार्थतामें ही यह आदर्श और यथार्थकी विकास–यात्रा चल रही है । निर्द्वन्द्वमें 'है' और 'होना चाहिये'की लीला चल रही है ।

यथार्थ और आदर्श, निर्द्वन्द्व सत्ताके अभाव एवं भाव पक्षकी ही अभिव्यक्तियाँ है । यथार्थ भी निर्द्वन्द्व ही है और आदर्श भी । वही एक समग्र, यथार्थकी रिक्ततामें होकर आदर्शकी पूर्णतामें, स्वयंभू सत्ताकी रिक्ततामेंसे होकर आदर्शकी पूर्णतामें सत्ताकी आनन्द–क्रीड़ामें निमग्न है । समग्रता ही यथार्थ और समग्रता ही आदर्श है ।

समग्रता ही प्यास है और समग्रता ही आदर्श है । समग्रता ही प्यास है और समग्रता ही तृप्ति । समग्रता समस्या भी है और है समाधान भी । समग्रता ही बीज है और समग्रता ही वृक्ष है ।

यथार्थ और आदर्शमें आत्यन्तिक विरोध नहीं है। दोनों निर्द्वन्द्वकी दो अवस्थाओंके सूचकमात्र हैं। यथार्थमें आदर्श अनुस्यूत है और आदर्शकी अपनी यथार्थता है।

यथार्थका 'है' एक ऐसे गँदले अस्थिर जलके समान है जिसमें आदर्शका 'है' 'होना चाहिये' के रूपमें यथार्थरूपी जलमें व्याप्त होते हुए भी उसकी अन्तरात्माके रूपमें प्रतिविम्बित हो रहा है। यदि कोई यथार्थकी धूमिल स्थितिमें रहते हुए आदर्शके विम्बकी यथार्थता देखना चाहता है तो अवश्य यह असंभव कल्पना होगी। मनकी सीमित चेतनामें प्रतिबिम्बित पूर्णकी प्राप्तिके लिये 'मन'को आलोड़ित करना निरर्थक श्रमके अतिरिक्त और क्या है ? जलमें पड़े हुए प्रतिबिम्बको पकड़नेसे 'चन्द्र' कभी पकड़ा नहीं जा सकेगा। आदर्शकी उपलब्धिके लिये तो उसतकं चेतनाको आरोहण करना होगा।

धूमिल सीमित मनकी चञ्चलता, 'पूर्ण' विम्बकी स्पष्ट कल्पना करनेमें भी असमर्थ है। जव-जव भी वह उसे अपनेमें बाँधने चलती है यह उसके अंकसे बाहर ही रह जाता है। प्रतिविम्बको पकड़नेके आवेगमें सक्रियता तो रहती है किन्तु अन्तमें रिक्तता ही हाथ लगती है।

मानवताके धर्म और विज्ञान दोनों हाथ आज खाली हैं। दोनों ही पद्धतियाँ असफल हुई हैं। और इस घोर प्रयासमें मानवीय शक्ति थक-सी गयी है। फिर भी हताशाकी इस घड़ीमें उसकी अन्तरवर्ती शक्तिकी क्रियाशीलता पराजय स्वीकार किये बिना अपनी अन्तिम विजयके प्रति आस्वस्थ अनवरत संघर्ष करते हुए अब पूर्वकी अपूर्णताको अग्रिम विकासके लिये कहीं अधिक

उन्नत और व्यापक ज्ञानमें समाहित करते हुए आदर्शकी उँचाइयोंमें आरोहणके लिये एक सम्यक् और समग्र पथको प्रशस्त करनेमें सक्षम होती जा रही है ।

मात्र वृक्षकी स्वीकृति न तो बीजकी मौलिकताका पता दे सकेगी और न ही बीजको तोड़कर वृक्षका पता लगाया जा सकेगा । यद्यपि बीजको सम्यक्रूपसे विकसित करनेमें हम वृक्षको अवश्य उपलब्ध करनेमें समर्थ हो सकते हैं । बीजकी आन्तरिकतामें वृक्ष सन्निहित है और वृक्षमें बीज समाहित है । यथार्थ अपनी समर्थतामें एक ही साथ बीज एवं वृक्ष दोनोंको समाहित किये हुए है । बीज यथार्थ है और वृक्ष आदर्श किन्तु वृक्ष बीजका अतिक्रमण ही नहीं रूपान्तरण भी है। यद्यपि समग्रतामें ही यथार्थ और आदर्शका द्वन्द्व है किन्तु समग्रता अपने समग्रस्वरूपमें इस द्वन्द्वको समाहित करते हुए द्वन्द्वसे सर्वथा परे निर्द्वन्द्व है ।

यह निर्द्वन्द्व चेतना ही मनुष्यकी चिरशाश्वत अभीप्सा है इसकी परम उपलब्धि एवं अभिव्यक्तिके लिये सीमित मनस्को अतिक्रमण करती हुई व्यक्ति - चेतना जबतक निर्द्वन्द्व चेतनाकी समग्रतामें पूर्णतया रूपान्तरित नहीं हो जाती–तबतक ज्ञानालोककी 'समग्र सत्ता'का 'अमृत कुम्भ' धरतीकी प्यासको तृप्त कर देनेकी प्याससे प्यासा ही रहेगा । केवल धरती नहीं समग्र भी प्यासा है ।

विश्व–जीवनमें अब उस मंगलमयी बेलाकी उपस्थितिका सुयोग निकट है जब प्यासी धरती उर्ध्वमुखी होकर जीवन प्रभुके दसों दिशाओंसे बरसती हुई अनन्त करुणामयी कृपाके 'अमृत कुम्भ' का पानकर परम संतृप्त हो उठेगी । वह दिन होगा धरतीपर 'प्रज्ञापुरुष'का अवतरण–पर्व । अब धरतीपर प्रकाशके साम्राज्यमें एक अभिनव प्रज्ञाशील समाज–जीवन क्रीड़ा करेगा ।

'सत्यं शिवं सुन्दरम्'की सनातन अन्तर्यात्रा अपनी अभिव्यक्तिकी पूर्णताके लिये अब धर्म एवं विज्ञानकी समस्त अतियोंका परिहार कर मानवीय चेतनामें जिस समग्र रूपान्तरणको साधित करनेकी ओर उत्सुक है — 'स्वबोध कुम्भ' की आयोजना उस आरोहणकी ही मूर्त्त उपस्थिति है । ज्ञानालोकके विजय-अभियानकी मध्य कड़ीके रूपमें 'स्वबोध कुम्भ' व्यक्तिचेतनाको मनसातीत उच्चतर प्रज्ञामें उठा ले जाने तथा द्वन्द्व एवं समन्वयसे भी परे निर्द्वन्द्व समग्रताके अमृतसे मन-प्राण-देहको सींचते हुए विश्वजीवनको अमृतमय बना देनेके लिये पृथ्वीके क्रोडमें अपने अन्तर्चापको विकसित करती हुई दिव्य चेतनाकी अभिव्यक्तिके लिये जागतिक क्रियाशीलताका ही समष्टिगत उन्मेष है ।

जहाँ अवतकके 'कुम्भ' मनुष्यको जगत्के पार मुक्तिके अमर देशमें पहुँचानेके लिये 'ज्ञानालोक' के अमृत मंत्र देते रहे हैं । वहीं कुम्भोंकी परम्पराको एक नवीन समृद्धिसे भरते हुए 'स्वबोध कुम्भ' व्यक्तिगत मुक्तिके स्थानपर धरतीको द्वन्द्वसे मुक्त करानेके लिय सर्वमुक्तिकी 'समग्र साधना' की 'अमृत दीक्षा' प्रदान करेंगे । और धीरे-धीरे विस्तारित होते हुए जीवनकी 'समग्र साधना' का यह दिव्य अमृत धरतीके विभिन्न देश-देशान्तरोंमें संयोजित होने वाली कुम्भ समष्टियोंके माध्यमसे वितरित होता हुआ धरतीके प्रत्येक गाँवको आप्लावित करनेमें समर्थ होता जायगा ।

किन्तु विराटकी इस विराटतम संसिद्धिमें मनुष्यको पूर्णताकी उपलब्धिके लिये सचेतन रूपसे हिस्सा लेना पड़ेगा । पूर्णत्वकी प्राप्ति पूर्ण समर्पणके विना संभव न होगी । पूर्ण बलिदान ही पूर्ण अमरत्वका द्वार है । इतिहासने देहके बलिदानसे दैहिक अमरताको जीया, प्राणोंके बलिदानसे स्वर्गिक अमरताका स्वाद चखा और मनके बलिदानद्वारा मुक्तिके राज्यको भी जाना ।

किन्तु देह —प्राण-मनके अहंसे गर्वित आत्म-चेतनाको अस्तित्वप्रभुके प्रीत्यर्थ जीवनयज्ञकी समिधा नहीं बना सका । हम समग्रतापूर्वक अपना आत्मबलिदान नहीं कर सके ।

हमने सबको मरते देखा किन्तु सीमित 'स्व'की क्षुद्र अहमात्माकी मृत्यु नहीं देखी, अपितु इसी एककी निरन्तर अव-तक पूजा की है । इसी एक देवके लिये हम मुक्तिका आनन्द, स्वर्गका सुख और संसारका भोग समर्पित करते रहे । यही हमारा आराध्यदेव बना रहा । हमने परमात्माकी शरणागति नहीं पायी । वरन् अपने अहंमात्माकी ही शरण ले रखी है ।

विराट प्रभुसे जिस स्वके लिये हमने सब कुछ चाहा उस एकको परम आराध्यके श्रीचरणोंमें चढ़ा नहीं सके । अपने लिये ही हमने 'भगवान्'की माँग की किन्तु भगवान्की माँगके अनुरूप निजको ढ़ाल नहीं सके । हमें अपने भोगका, सुखका और मुक्तिका भी परम देवके लिये समर्पण करना होगा । सर्वमय यज्ञ भगवान्के लिये अपने सर्वस्वकी आहुति दे देनी होगी । अबतक सृष्टि-प्रवाहमें जो कुछ भी 'हम' हैं वह सारा-का-सारा सम्पूर्णतासे विराटकी यज्ञाग्निमें स्वाहा कर देना होगा । जो जन्मा है उसे मरना ही होगा ।

मेरे प्रिय! अपनी इस महामृत्युसे इतना भयग्रस्त न हो । इस मृत्युमें ही तुम्हारा दिव्य जन्म छिपा है । मृत्युका अर्थ ही है एक नया जन्म । मृत्युकी प्रक्रिया है रूपान्तरण । अक्षमतासे क्षमताकी ओर, असमर्थतासे सामर्थ्यकी ओर एक आरोहण । अमृतको अपने भीतर रख पानेकी अक्षमतामें ही देहकी मृत्यु होती है- प्राण मरता है । महामाया प्रकृति फिरसे एक नयी और पूर्वसे भी अधिक विकसित सतेज रचनाको जन्म देती है ।

मृत्युको अस्वीकार करनेका अर्थ है – रूपान्तरणके नव जन्मकी अस्वीकृति । चूँकि अहमात्मक चेतना अमृतकी सक्षम धारक नहीं है अत: इसकी भी मृत्यु अवश्यम्भावी है । मनोमयी अहमात्माके मृत्युका अर्थ है – मनुष्यकी समग्र मृत्यु, और मृत्युकी यह पूर्णता ही पूर्णकी समग्रतामें मनुष्यके अमृत जीवनका प्रवेश द्वार होगी। यही पूर्णतामें मनुष्यका आरोहण होगा। यह समग्र मृत्यु ही 'समग्र मनुष्य'के दिव्य रूपान्तरणकी 'अमृत दीक्षा' है ।

किन्तु जबतक अहमात्मक चेतनासे युक्त मनोगत मनुष्य अमृतको धारण करनेकी निजकी अयोग्यताका दर्शन न कर ले तबतक यह अपनी मिथ्या आशामें ही चक्कर काटते हुए अपने नवजन्मसे वंचित रह सकता है । यदि वह स्वेच्छया अपनी सचेतनामें मृत्युका वरण नहीं करता तो ऐसे ही शरीर और प्राणोंको धारण करता हुआ युग-युगतक आवागमनके पुनरावर्तन चक्रमें उलझा रह सकता है ।

धरतीपर मनुष्यके दिव्य नवजन्मकी यही सबसे बड़ी बाधा है । कली अपनेमें ही वन्द रहकर खिलनेसे डर रही है । जब कि उसका यह खुलना ही उसे पुष्पके दिव्य स्वरूपमें रूपान्तरित कर देगा । कली यदि कलीके रूपमें ही अपनेको पूर्ण मानकर अपने खिलावको अस्वीकार कर दे तो फूलके रूपमें कलीका नवजन्म अवरूद्ध ही हो जायेगा । कलीकी मृत्युमें ही फूलका दिव्य जन्म छुपा है ।

कलीकी कलीके रूपमें मृत्यु ही कलीका फूल बन जाना है । फूलतक पहुँचनेके लिये कलीको अपने सीमित घेरेसे मुक्त हो जाना अनिवार्य है । यह मुक्ति ही उसे परम मुक्तिकी ओर अग्रसर करनेका प्रथम सोपान होगी । मनुष्यको अपनी परम मुक्तिकी उपलब्धिके लिये अहमात्मक चेतनाकी सीमिततासे मुक्त

हो जानेका महासाहस जुटाना होगा । और यह मुक्ति है मृत्युकी सचेतन स्वीकृति ।

यदि बीज मरनेसे भयभीत हो जाय तो उसका अन्तरवर्ती वृक्ष कैसे प्रकट हो सकेगा ? जड़ देहकी मृत्युने जड़को प्राणयुक्त स्पन्दनशील वनस्पतियोंमें रूपान्तरित किया । जड़ धरतीके मूलमें प्राणके अंकुर जागे और धरती पेड़–पौधोंसे भर गयी । धीरे–धीरे यह अंकुर पशु–पछियोंके रूपमें विस्तारित होने लगा । धरतीका जंगल वन्य जन्तुओं एवं आकाशचारी जीवोंकी भयानक गतिसे क्रियाशील हो उठा ।

अब प्राण अपनी मृत्युकी स्वीकृतिमें अपनी सीमाका अतिक्रमणकर मनमें रूपान्तरित हुआ और टहनियोंमें मानवीय चेतनाकी कलियाँ सजने लगीं । पशु–पंक्षियोंके जगत्में मनुष्यका पदार्पण हुआ । उसने जंगलको सुन्दर उद्यानमें परिणत कर दिया । धरतीका बाग नाना प्रकारकी रंग–विरंगी मानव–कलियोंसे शोभित हो उठा ।

किन्तु जीवन–वृक्षके मूलसे तनों एवं टहनियोंमें प्रवाहित होता 'समग्रता'का अमृत रस कलियोंमें आकर भी खिल न सका । बन्द कलियोंके अँधेरेमें मृत ही बना रहा । सौरभके अमृतमें बदल न पाया । मनुष्य ज्ञानालोकके उन्मुक्त आकाशको नापनेके लिये उधम मचाता रहा किन्तु उसके नेत्र बन्द ही रहे —वह अपनी अंधी दौड़में वेसुध रहा । मानव कलियोंने विराटके अमृत स्पर्शका अनुभव तो किया — वे पवनके स्नेहिल दुलारमें आनन्द विभोर मुक्त नाँचती तो रहीं लेकिन उनकी बन्द आँखें न खुलीं ।

आज आपसे वह मर्म कहने आया हूँ । कितने ही युग वीत गये — कलीके भीतर अँधेरेके तड़फड़ाते हुए – अमृतके मृत हुए । ज्ञानालोकका परम स्रोत सूरज, प्रकाश बरसा–बरसा कर

थका जा रहा है । प्रकाश कबसे कलीके भीतर उतर जानेको आकुल है और अँधेरा प्रकाशमें खुल जानेको व्याकुल ।

प्रकाश अँधेरेमें उतर जाना चाहता है और अँधेरा प्रकाशमें । किन्तु, यह एकत्व साधित न हो सका । कारण,- द्वारपर खड़े प्रेमी प्रभुके लिये कलीने अपना द्वार नहीं खोला । अमृतकी गोदमें रहकर भी अपने ही घूँघटमें सिमटी मुक्ति सर्वमुक्तिका सौरभ न बन सकी । कारण, कली मर न सकी — फूल बनकर ।

मानव-जीवन स्वयंकी आशाओं-आकाँक्षाओंमें ही बन्द रहा । सीमित और असीमका द्वैत मिट न सका । क्योंकि हम अपनी सीमाके सुख-मोहको भंग न कर पाये । मृत्यु और अमृतका महामिलन संभव नहीं हुआ । क्योंकि मृत्यु अपनी ही मृत्युका वरण न कर सकी ।

ऐ मेरी भोली आत्मा ! — अपना द्वार बन्दकर दिन-रात तुम जिसके गुणगान करती हो, जिसे रिझानेके लिये ध्यान और उपासनाके नाना आयोजन सजाती हो । आश्चर्य है- उसीके लिये स्वयंको खोलनेमें डरती हो ? उसी प्रभुके लिये जिसके लिये तुम जीने और मरनेका संकल्प सजोती हो — उसीके लिये मरनेमें मरती हो ? मर जाओ । पूराका पूरा । घूँघटके ये पट हटा दो । खोल दो-खोल दो । यथार्थ और आदर्शकी दूरी मिट जाने दो । अपनी मुक्तिको मुक्त कर दो ।---- मृत्युको मर जाने दो ।

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को धरतीपर उतार लानेके लिये मनुष्यको स्वयं अपनी बलि चढ़ा देनी होगी । इसके अतिरिक्त अब कोई दूसरा विकल्प नहीं ।'

ॐआनन्दम्

युग-सन्देश

प्रभुश्रीने हमारे सामने सम्पूर्ण मानव-समाजको एक परिवार बनानेका महान् लक्ष्य रखा है । जिससे वे सदासे हमें एक पंथकी भाँति समुदायबद्ध होनेसे बचनेकी चेतना देते रहे हैं । प्रभुश्रीने अपने जीवनकार्यके रूपमें समाज-जीवनकी जिस चुनौतीको स्वीकारा है - वह सचमुच असंभवको संभव बनानेका महान् संकल्प है ।

यह सत्य है कि आज गुरुओंके पीछे लाखों-लाखोंकी भीड़ खड़ी है, धर्म-स्थलोंपर माथा टेकनेवालोंकी संख्या गणनाके बाहर है । सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्योंको लेकर भी संस्थान और संगठनोंमें अनगिनत लोग लगे हुए हैं । तथापि सदियों-सदियोंसे समाजजीवन धर्म या राजनीतिके नामपर व्यक्तिगत, पारिवारिक व समष्टिगत सामाजिक लक्ष्योंकी स्वार्थपर धुरीपर घूम रहा है । जिसके लिये मोक्षरूपी आत्मसुख व स्वर्गसुखकी अपेक्षामें आत्मरूपान्तरकारी आध्यात्मिक जीवनकी धारणा सुग्राह्य नहीं ।

कहा जाय तो वह भगवान्‌का पुजारी अवश्य हुआ है किन्तु स्वयंकी भगवत्ताका पुजारी नहीं, वह उसकी प्राप्तिकी साधनाका पथिक नहीं । और यही कारण है कि धरतीपर अबतक सच्चे धर्मकी प्रतिष्ठा संभव न हो सकी । सर्वत्र भगवान्‌की पूजाका धर्म प्रचारित हुआ, उनकी भक्तिकी बाढ़-सी आयी किन्तु वसुधा भगवत्तासे शून्य है । निराकार या साकार भगवानोंकी धूम मची पर भगवत्ताका दर्शन दुर्लभ हो गया ।

आज धार्मिक संप्रदायोंकी सांघिकता, सामाजिक हित-साधकोंकी दलबन्दी, जाति-वर्ण और वर्गगत राग-द्वेष तथा सर्वत्र

स्वार्थोंकी सिद्धिमें तीर्थ-व्रत, देवालय, समाधियों, मजारोंकी मनौती मनाती हुई मानवता तान्त्रिक-मांत्रिक, ज्योतिषियों और ओझाओंका चक्कर लगा रही है। तीज-त्यौहारों और मेलोंमें भूला हुआ मानवसमाज यथार्थ जीवन-सत्य और उसकी सिद्धिके आदर्शसे जैसे लाखों कोस दूर हो गया है। ऐसी विषम परिस्थितिमें 'सत्य धर्म' की अलख जगानेके लिये गाँव-गाँव घूम रहे प्रभुश्रीकी करुणा अकल्पनीय है।

प्रभुश्री गुरुदेवने अर्थ और कामकी होड़में सरपट दौड़ रहे मानव मनको धर्म और आत्मरूपान्तरणके जिस मोक्षकी याद दिलानेका शंखनाद किया है। वह असंभवको संभव बनानेके समान असाध्य नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है। फिर भी धरतीपर मानवजातिकी आत्यन्तिक सुख-शान्तिका इसके सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं।

इसीलिये प्रभुश्री कहते है- "यह स्वबोध-साधनाशैली मानव मनके लिये उसी प्रकार ग्रहण योग्य नहीं जैसे आजतक संसार दुःखसे दुःखी हो वह संन्यासी होता आया या फिर सांसारिक जीवनकी सुख-समृद्धिके लिये तथाकथित धर्म और उसके अनुष्ठानोंकी स्वीकृति करता आया है। इस स्वबोध-साधना जीवनके प्रति उसे उत्सुक बनानेके लिये प्रयासपूर्वक उसके मन-बुद्धिको शिक्षित करनेकी आवश्यकता है, क्योंकि जीवन-रूपान्तरणका लक्ष्य उसके लिये नया ही नहीं अकल्पनीय भी है।"

और इसीलिये प्रभुश्री 'स्वबोध-संदेश' को एक शिक्षात्मक आन्दोलनके रूपमें व्याख्यायित करते हैं जिसकी सिद्धिके लिये अनवरत पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलनेवाली परम्पराकी आवश्यकता होगी। जो धीरे-धीरे समाजव्यापी होकर एक-एक जनको धरतीके

इसी जीवनमें अपने मानवतनमें ही मुक्ति और स्वर्गिक सुख-समृद्धिको उतार लानेकी संभावनाके प्रति वैचारिक रूपसे नमनशील बनाती चलेगी । साथ ही जो इस धारणाकी सिद्धिके लिये तैयार होंगे, उन्हें 'स्वबोध-साधना' की अतिमानसिक यात्राका पथिक भी बनाती चलेगी । इसी दृष्टिसे 'धार्मिक शिक्षा और आध्यात्मिक दीक्षा' दोनोंका प्रभुश्रीने हमारे लिये प्रकाश किया है ।

तो अबतक जो इस पथके पथिकोंकी संख्या अधिक नहीं हो पायी है- हमारे लिये यह निराशाकी बात नहीं बल्कि एक चुनौती है कि हमें और भी उत्साहके साथ इस दैवीकार्यमें लगकर लक्ष्यको अधिकाधिक निकट लानेके पुण्य प्रयासमें सक्रिय होना है, जिससे यह नवीन धारणा संसारके लिये सुग्राह्य हो सके ।

जैसे किसी कक्षाके किन्हीं विद्यार्थियोंको कोई विषय कठिन हो तो उस विषयमें उनपर अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता होती है वैसे ही इस विषयमें भी हमें समाजजीवनमें लोगोंकी उपेक्षासे निरास न होकर प्रभुश्री जैसे हमारे लिये श्रम करते आये हैं - हमें भी लगातार श्रम करते चलनेकी आवश्यकता है ।

'स्वबोध जागरण-दीप' इसी श्रमकी पाठशाला है - यह प्रभुश्रीके 'धर्म-संदेश' को धरतीपर चरितार्थ करनेवाला परम साधन है, जिसे नियमित करना इसलिये ही अत्यावश्यक है कि धर्म-शिक्षाका क्रम कभी भंग न हो और एक-एक कर गाँव-गाँव, नगर-नगर इस धर्म-शिक्षाकी दीपशिखासे ज्योतित हो उठे ।

किन्तु इस 'शिक्षा-प्रसार' के क्रममें यह बात मुख्यरूपसे ध्यान देनेकी होगी कि इसे हम मात्र 'विचार-प्रचार' की प्रक्रिया न समझें । जो हमारे भाषण देने या प्रवचन करनेसे संसारमें फैल जायेगी कि जैसे अबतक हमसे इसे विचारों या सिद्धान्तोंके प्रचारकी विधि समझ बैठनेकी भूल होती रही है ।

देखें तो मत–सिद्धान्तोंके प्रचारमें ही दुराग्रहकी वह जड़ बैठी हुई है कि 'केवल मेरा मत सही है' । पूरी धरतीपर सांप्रदायिकताका यही मूल कारण है । यही वह वीज है जिसमेंसे नये–नये अनेक प्रकारके अंकुरणसे संसार उन्मादग्रस्त हो रहा है । चाहे राजनीतिक दल हों या धार्मिक मत–पंथ, सभी इस रोगसे ग्रस्त है ।

सर्वत्र विचारों और मतोंका विवाद चल रहा है और सभी इसी कोशिशमें हैं कि उन्हींके मतमें सारी दुनिया हो जाय । परिणामतः सारा विश्वजीवन सिद्धान्तों और मतका विश्वासी हो जीवनसे ही दूर हो गया है । वह सच्चे परमात्मासे विमुख हो परमात्मविषयक विचारके लिये ही युद्ध करनेवाला हो गया है । उसके लिये परमात्मा नहीं स्वयं उसका मत महत्त्वपूर्ण हो गया है और अनजाने वह इसी आग्रहमें स्वयं अपने अहंकारका पुजारी हो गया है ।

प्रभुश्री कहते है "विचार या मत जीवन नहीं । वह जीवनका संवाहक अवश्य है किन्तु स्वयं जीवन नहीं । जीवनको केवल वुद्धिगत मान लेना या श्वाँसोंके आने–जानेकी प्राणमयताको जीवन समझ वैठना 'जीवन' की सम्यक् समझ नहीं । जीवन स्वयं हमारी सत्ता है – हमारी आत्मा है – हमारी समग्रता है । अतः सच्ची शिक्षाका आशय भी जीवनको उसकी समग्रतामें समझने, जानने और जीनेसे है ।"

इसी दृष्टिसे हमारे लिये धर्म–शिक्षाका अर्थ परमात्माके विषयमें मत या सिद्धान्तविशेपका प्रचारमात्र नहीं । अपितु जीवनको धार्मिक वनानेवाले संस्कारक्षम परिवेशका निर्माण है । हमें ऐसे परिवेशका निर्माण करना होगा जिससे स्वयं धार्मिक भावका जागरण हो । हमें ऐसे कार्यक्रमोंकी रचना करनी होगी जो

जनमानसको धर्मजीवनके प्रति संस्कारित कर सकें । जैसा प्रभुश्रीका मूल भाव है कि 'हम समाजजीवनमें एक पंथकी भाँति नहीं बल्कि यथार्थतः धर्मजीवनकी प्रतिष्ठाके पथिक हैं ।'

तो हमें अपने आदर्शके अनुरूप ही पांथिक दुराग्रही विचारोंकी प्रचारशैलीसे मुक्त हो एक दूसरेकी आलोचना-प्रत्यालोचनासे दूर, सबके प्रति भेद-भावसे रहित हो एक परिवारके सदस्योंकी भाँति प्रेमपूरित होनेकी आवश्यकता है ।

प्रेम ही हमारी धर्मशिक्षाका मूलाधार है कि हम सब धरतीके समस्त मानव एक परिवार हैं फिर चाहे वह किसी पंथ-संप्रदायका हो, किसी जाति या किसी समुदायका हो, उसकी गुरुपरम्प्ररा जो भी हो- हमें इसका भेद नहीं रखना है । बल्कि हमें इस भेद-भावसे युक्त मानवसमाजको धर्मकी सार्वभौमिक एकतामें आवद्ध करन हैं । यही हमारा अभियान है । सारी दुनियामें धर्म-चेतनाका जागरण हो- यही हमारा आन्दोलन है ।

हम अमुक-अमुक पंथोंकी भाँति केवल अपनी गुरुपरम्परामें दीक्षित शिष्योंके वर्ग-संगठनके पक्षधर नहीं और न अपने गुरुको एकमात्र सच्चा गुरु माननेके अन्धविश्वासी । हमें धरतीके समस्त गुरुओंके शिष्य समुदायोंको एक धर्म-परिवारके रूपमें संघबद्ध करना है- हमारे गुरुदेवका यही मूल संदेश है । इसकी हमारे भीतर स्पष्ट पहचान होनी आवश्यक है ।

कारण, अपने साधक परिवारमें भी ऐसे लोग हैं जो स्वबोध-साधनाका पक्ष लेकर औरोंसे इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हैं कि उन्हें पराजित कर देनेमें ही उनकी सार्थकता है । वे किसीको बुद्धिसे ही परास्तकर इस साधना-पथके पथिक बना देना चाहते हैं । किन्तु हमारे लिये इस शैलीका अनुसरण उचित नहीं ।

यद्यपि धरतीपर सभी अपने गुरु और अपनी साधना-विधिके पक्षधर हैं किन्तु यह पक्षधर्मिता ही उन्हें सम्प्रदाय वनानेवाली होती है और वे सार्वभौमरूपसे धरतीपर धर्म-आन्दोलनकी अगुआयी नहीं कर पाते । कहनेको सभी कहते हैं कि उनका संदेश सारी दुनियाके लिये है, किन्तु इस प्रकारसे वे सारी दुनियाको अपने ही झंडेके नीचे ले आना चाहते हैं । उनका आशय सबको अपने मतमें मतान्तरित करनेका ही होता है । उनके लिये तभी सारी दुनिया एक है जव वे उनके मतमें एक हो जायँ । जब केवल वे रह जायँ । अन्यथा धर्मान्तरणका धरतीपर अर्थ ही नहीं होता ।

तो सभी पांथिक अपनी गुरु-परम्पराके विश्वविजयमें ही विश्वशान्तिका स्वप्न देखनेवाले हैं किन्तु यह विराट सत्ताका सत्य नहीं । यह स्पष्टरूपसे परमात्माके दैवी विधानके विरूद्ध है । धर्म नहीं अधर्मका पक्ष है । यह रामका नहीं रावणका सत्य है । इसीलिये प्रभुश्रीने विश्वमानवको उसकी इस भूलसे उबारने और जो सचमुच सज्जन हैं पर धर्मके नामपर छद्मरूप सम्प्रदाय-भावके पक्षधर हो अनजाने साम्प्रदायिकताके विस्तारमें अपने तन-मन और धनकी अकूत शक्तिका अपव्यय करनेवाले हो रहे हैं, उनका इस दुष्चक्रसे उद्धारकर धरतीपर सच्चे धर्मसंघकी सर्जनाके लिये हमें आमंत्रित किया है ।

प्रभु श्रीगुरुदेवकी यही वह महत्ता है जिसे हमें पहचानना है और इस पहचानको ही हमें अपने अभियानका आदर्श वनाना है । 'स्वबोध जागरण दीपों' के द्वारा प्रभुश्री हमसे यही चाहते हैं कि उसके माध्यमसे हमारा 'मिलन पर्व' हमारे प्रेमका पर्व बने । जिससे हम समाजके एक-एक घटकको अपना परिवार बना सकें ।

अत: इस भावसे कि कोई हमारी स्वबोध-परम्पराका शिष्य हो जाय- ऐसी स्वार्थवृत्तिका अनुसरण न कर मात्र इस भावसे कि वह एक ही परमात्मा सद्‌गुरुकी शिष्य-संतति है - हमें सबको परमात्म प्रेम-पथका पथिक बनाना होगा । व्यक्तिगतरूपसे कोई चाहे किसी पंथका पुजारी हो या सामान्यजन - सभी हमारे भाई-बहन हैं - हमें सबको ही समष्टिरूपसे 'विश्वधर्म परिवार' का अंग बनाना है ।

'स्वबोध-शिक्षा प्रसार'की हमारी यही सम्यक् विधि होगी । हम जानते हैं कि परिवारमें बिना प्रेमके कोई शिक्षा किसीपर असर नहीं करती । बल्कि जो केवल उपदेशककी भाँति बोलता रहता है वह भले अपना पिता ही क्यों न हो उसकी कोई नहीं सुनता, जब कि सबके साथ प्रेमसे जीने वालेकी हर बात प्रभावी होती है और बिना कहे ही उसकी बात मान्य होती है ।

इस प्रकार पारिवारिक आत्मानुशासन ही 'स्वबोध-शिक्षा' का आधार है । जिस आधारसूत्रसे हमें व्यक्ति-व्यक्तिको संघबद्ध करना है और उसे विश्वधर्म भावनासे संस्कारित करना है । फिर इस क्रमसे स्वाभाविक ही जिन्हें प्रभुश्रीकी 'स्वबोध-साधना परम्परा' में व्यक्तिगतरूपसे सम्मिलित होनेकी प्रीति जन्मेगी, उन्हें 'उपनयन-दीक्षा'के क्रमसे 'स्वबोध-साधना'की अन्तरंगतामें भी प्रवेश करनेका सहज अवसर मिलता रहेगा । वे प्रभुश्रीके विराट धर्मसंघका संगलाभ करनेका सौभाग्य तो पायेंगे ही साथ ही उन्हें व्यक्तिगतरूपसे अपनी आध्यात्मिक उन्नतिका भी सुअवसर प्राप्त होगा ।

तो सबसे प्राथमिक बात है प्रभुश्रीकी धर्मोपदेशनाके इस अन्तरमर्मको समझनेकी, - स्वयं अपने भीतर ही प्रभुके इस महान्

दैवीकार्यको पहचाननेकी, कि धरतीपर उनका जीवनकार्य क्या है? कि 'वे मानवसमाजमें सम्प्रदायवद्ध साधना या पूजा-प्रणालीरूप मतविशेपके उपदेशक नहीं अपितु सार्वभौम समष्टि धर्मतत्त्वके प्रवर्तक हैं ।' यदि हम इसे अपनी पहचान बना पाये तो पायेंगे कि हमारा हृदय स्वयमेव चेतनाकी उस ऊचाँईपर स्थित हो जायगा कि हम प्रभुश्री गुरुदेवके प्रति श्रद्धासे नत हो जायँगे और हमारी सक्रियताका पथ स्वत: प्रशस्त हो जायगा ।

वस्तुत: हम प्रभुश्रीके विराट भावको ही अपनी पहचान नहीं बना पा रहे हैं । अन्यथा हममें 'जागरण दीपों'के माध्यमसे प्रभु-संदेशके प्रसारमें प्रमादकी स्थिति नहीं आती । 'स्वबोध-संदेश' प्रसारकी यही असली बाधा है । अन्यथा इसकी प्रसार गतिमें भी तीव्रता संभव है क्योंकि यह युगकी मांगका सही समाधान है ।

किन्तु प्रभुश्रीका यह अभियान कुछ वर्षोंमें पूरा होनेवाला नहीं और न ही भापण व कथा-प्रवचनमात्रसे सबके दिलोंमें बैठ जानेवाला है । यह प्रत्यक्ष धर्मका मार्ग है । जो स्वयंके जीनेसे स्वयमेव फूलकी सुगन्धकी भाँति फैलनेवाली अनन्तताका पथ है । इसमें धैर्य ही हमारा संबल होगा । हमें सतत् सक्रिय बने रहना होगा ।

जैसे रोज साँझको दीप जलाना आवश्यक है वैसे ही जन-मनके अन्धकारको दूर करनेके लिये अपने-अपने जागरण दीपोंको प्रज्वलित किये रखना भी हमारी रोजकी आवश्यकता होगी । तभी प्रकाशकी शक्तिका संचय होगा और विश्वजीवन अन्धेरेकी विनाशक शक्तियोंको पराभूत करनेमें समर्थ हो अपने परम वैभवको उपलब्ध हो पायगा ।

संसार 'धर्म-पथ' का अनुगामी हो अधर्म-अन्धकारकी शक्तियोंके आक्रमणकारी प्रभावसे मुक्त हो, इसके लिये उसे पांथिक सामुदायिक संगठनाकी नहीं वरन् एक वैश्विक 'धर्मसंघ' के रूपमें परिवारबद्ध होनेकी आवश्यकता है । और यथार्थत: यही सांप्रदायिक धार्मिकताके परस्पर संघर्षसे मानवजातिको मुक्त करनेका सम्यक् पथ होगा ।

जगत्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण अपने अवतरणका प्रयोजन वताते हुए धर्म-स्थापनाके साथ 'विनाशाय च दुष्कृताम्'का भी उद्घोष करते हैं । तात्पर्य यह कि दुष्कृत्य व दुष्ट शक्तियोंका विनाश भी परमात्माके प्रकाशका दैवी कार्य है । जो प्रकाशके जागरणकी स्वाभाविक प्रक्रिया है । धरतीपर जो अन्धेरा है, जो दुष्कृत्य है, उस अन्धेरेकी शक्तिका विसरण मात्रप्रकाशके अवतरणसे ही संभव है ।

प्रकाश ही धरतीके अन्धेरेको विनष्ट करनेवाला है । और वह प्रकाश ही धर्म है- जिसके लिये प्रभुश्रीने हमें 'स्वबोध जागरण दीपों' की शृंखला सजानेकी वह 'दीप-पद्धति' प्रकाशितकी है, जिसके प्रकाशमें धर्मशक्तिके महाजागरणसे मानवजातिके वर्तमान व भविष्यकी समस्त समस्याओंका सम्यक् समाधान होना है ।

धर्म जागरण ही साम्प्रदायिकताके आतंक-अन्धकारका अन्त है । प्रभुश्रीका यही आमंत्रण है । आइये, हम धर्म-शक्तिका संचय करें कि धरतीपर प्रज्ञानसूर्यका नवोदय हो ।

ॐ विश्वात्मने नम:

सरोजिनी माँ



प्रज्ञापुरुष ॐश्रीआनन्दप्रभु

प्रभुश्री, परमात्म जीवनकी सनातन धाराके ऐसे नूतन अध्याय है जिनमें श्रमसे विश्रान्ति और विश्रान्तिमें श्रमकी 'समग्र साधना' शव्दायित हो रही है, और अर्थायित हो रहा है वह जो शव्दातीत है।

वे स्रोत हैं उस परम आत्मज्ञानके जिसमें सत्ताकी समग्रताका सत्य अपनी प्रज्ञापरिधिमें व्यष्टि विन्दु एवं समष्टि त्रिज्याओंके युगपत जागरणका अभियान रच रहा है। जिसका मन्त्र है -'स्ववोध' और लक्ष्य है-'सर्वमुक्ति'।

वे साधनारत हैं- ऐसे प्रज्ञाशील मानव समाजकी अभिनव सर्जनामें- जिसमें मनोमय मानवके भीतर विज्ञानमय अतिमानवका दिव्य जन्म संसिद्ध हो, और संस्थापित हो धरती पर एक सार्वभौम विश्वधर्म एक सार्वभौम विश्व संस्कृति और एक सार्वभौम विश्वराज्य।

वे सूत्रधार हैं उस आत्म-उत्क्रान्तिके - जो समस्त मताग्रहों, अन्धविश्वासों और विपमतापूर्ण शोपणको पराभूत कर विश्व परिवार के समग्र विकास हेतु व्यक्ति-व्यक्तिमें उसके आन्तरिक गुण-कर्म और स्वभावके अनुरूप अपने-अपने 'स्वधर्मानुसार जीनेकी आध्यात्मिक जीवन शैलीकी प्रतिप्ठाके लिये कृत संकल्प है।

'स्ववोध आश्रम' प्रभुके उसी युग प्रवर्तक सत् सन्देशका संवाहक है। जिसका उद्घोप है - 'स्ववोधः परमो धर्मः' और उद्देश्य है- 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'।

आइये! विश्व उद्यानमें खिल रहे 'प्रज्ञानपुरुप' ऐसे दिव्य सौरभका स्वागत करें कि हम स्वयं सुवासित हो जगत्को सौरभमय कर दें।

स्ववोध आश्रम

श्रीज्योतिर्धाम वाराणसी (उ.प्र.)



" मर्त्य धरापर विज्ञानमय सत्ताके अमृतका वह 'स्वबोध कुम्भ' लेकर आया हूँ – जिसे पीकर मर्त्यमानव मर जायगा और जन्मेगा एक नया मनुष्य – प्रज्ञापुरुष । मैं अपने दोनों बाहोंको फैलाकर धरतीके समस्त मानवोंको आमंत्रित करता हूँ

आओ ! जीवनके इस विराट यज्ञमें अपने स्वयंकी आहुति दो । जो मर्त्य है मर जाने दो । तभी प्रज्ज्वलित यज्ञाग्निसे प्रकट होगी एक अभिनव सृष्टि प्रज्ञाशील मानव समष्टि और सृजित होगा- एक नूतन विश्व स्वबोध विश्व ।"



प्रज्ञापुरुष ॐश्रीआनन्दप्रभु





स्वबोध आश्रम-श्रीज्योतिर्धाम,
कोईराजपुर-हरहुआ, वाराणसी (उ.प्र.),
दूरभाष (0542) 2624986
email: aashramswabodh@gmail.com
Visit Us : www.swabodhaashram.org

